© हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, १९६७

मूल्य : दो रुपये

पहला भाग

सामान भी तो नाम-मात्र को ही था उसके पास। 'बीबी के दो चीथड़े, टूटा कम्पस हाथ' वाला हाल। नीचे बिछाने को एक पुरानी-सी चटाई, ऊपर ओढ़ने के लिए फटा-पुराना एक कम्बल और खादी की एक चादर। नाम-मात्र को एक रजाई भी थी उसके पास, परन्तु बिल्कुल गठरी-सी। सीवनें टूटी होने के कारण अन्दर की रुई इधर-उधर इकट्ठी हो गई थी।

बर्तन-भांडे के तौर पर उसके पास यदि कुछ था तो मुड़े हुए किनारों वाला एक पतीला, टेढ़ी-सी थाली, दरारें पड़ा हुआ फूल का कटोरा और बहुत अच्छी हालत में लोटा।

इसके अतिरिक्त दयाले के पास न जाने कब का संजोया हुआ थोड़ा-सा पैसा-धेला भी था, जो सब मिलाकर होगा कोई सात-आठ रुपये।

यह सब अटरम-पटरम उसने चटाई में समेटा, मूंज की रस्सी के दो-चार लपेट देकर बांधा और इसे कंधों पर रखकर भोर होते ही ठाकुरद्वारे की चार-दीवारी से निकल खड़ा हुआ।

किसीका क्या रखा जाता था उसके बिना जो उसे जाने से मना करता। अलबत्ता उसके दो-चार ठेलुए थे गांव में, उनमें से यदि किसीको पता लग जाता तो चाहे उसे रोकने की कोशिश की जाती। सम्भव है इसी डर के कारण दयाले ने सुबह-सुबह ही गांव से निकलने का फैसला किया हो।

बचपन में ही दयाला अनाथ हो गया था। गांव में एक बार प्लेग

दयाले ने संभाल रखी थी। नाथ के जिम्मे कोई काम था तो गांव में जाकर भिक्षा मांग लाना और झगड़े का अधिकतर कारण भी यही भिक्षा थी। जब कभी बीमारी की वजह से नाथ गांव जाने में असमर्थ होता तो वह दयाले को यह काम सौंप देता, परन्तु दयाले की तो वह बात थी कि 'रस्सी जल गई पर बल न गया।' साधु होकर वह भिक्षा मांगने जाए, और उन लोगों के पास जो उसके परिवार में से थे!

दूसरी अनबन जो इन दोनों में कभी-कभी हो जाती थी, वह था 'चिलम' का बखेड़ा। नाथ को शिकायत थी कि वह पेटू किस मर्ज की दवा है, यदि चिलम भरकर नहीं दे सकता। पर दयाला मजबूर था। वह तो 'गुरु का सिक्ख' था। चिलम को कैसे छूता। उसके मन में ज्यादा आग तब लगती जब खीझा हुआ नाथ उसे गाली देता ही अलग, उसके गुरु की शान में भी कड़वी-कसैली बातें मुंह से निकालता। और उत्तर में जब दयाला अपने गुरु की करामातें गिन-गिनकर सुनाना प्रारम्भ करता तो नाथ का पारा और भी चढ़ जाता। वह यहां तक कह उठता—"अरे बड़े देखे हैं ऐसे पाखंडी। यदि इतना करामाती है तेरा गुरु तो तुझे ही राजा-नवाब क्यों नहीं बना देता, जो कुत्ते की तरह यहां पड़ा है?"

नाथ की इस तरह की जली-कटी बातें सुनकर कई बार दयाले का मन इतना दुखी हो जाता कि वह उसी क्षण वहां से चल देने के लिए तैयार हो उठता, पर नाथ भी तो इस बात से अनजान न था कि ऐसा सस्ता और परिश्रमी सेवक मिलना कठिन है। अतः वह प्यार-पुचकार से दयाले का गुस्सा ठंडा कर देता।

प्रतिदिन इस तरह के गाली-गलौज सहते हुए जब कभी दयाले का धीरज बेकाबू हो उठता तो उसे अपने पर दया भी आती, गुस्सा भी। धनियों की संतान होकर वह कितना गिर गया है कि रूखी-सूखी रोटी के बदले में उसके साथ यह दुर्व्यवहार होता है। इससे तो अच्छा है कि डूब मरे। तब मन से वह सोच विचार के घोड़े दौड़ाने आरम्भ कर देता—किसी जगह यदि उसके सींग समा सकते! परन्तु कहीं भी उसे कोई आश्रय दिखाई नहीं देता था। कई बार उसने चले जाने का विचार किया परन्तु कभी भी उसका मन्सूबा पूरा न हो सका—आदर गुणों की कद्र होती है, हाड़-मांस की नहीं।

शायद इस प्रकार की भावनाओं ने ही उसके स्वभाव में कुछ स्वाभिमान पैदा कर दिया था। अब नाथ की गालियां खारे पानी के स्थान पर उसे पेशाब जैसी महसूस होतीं। जिसका परिणाम यह हुआ कि नाथ के साथ उसकी कहासुनी और कटने की अवधि लम्बी होती गई। जो बढ़ते-बढ़ते अन्त में उस सीमा तक पहुंची जिसके सामने केवल टूटना ही बाकी रह जाता है। और वह भी एक दिन होकर रहा।

बात कोई नई या अनोखी नहीं थी, वही पुराना रोना-धोना, पर उस दिन गुरु-शिष्य के बीच मामला कुछ ज्यादा ही बिगड़ गया। बाद में दयाले ने यह अनुभव भी किया कि गलती उसीकी थी। पर मामला जो एक बार बिगड़ा तो बिगड़ता ही चला गया।

वैसाख बीतकर जेठ चढ़ चुका था, पर दयाले को इस बार 'पीलू' खाने का मौका ही नहीं मिला। कटाई का समय होने के कारण उसके साथी अपने कामों में व्यस्त थे, और अकेले खाने की इच्छा नहीं होती थी। उस दिन जैसे-तैसे उसके साथियों ने समय निकाल ही लिया और सुबह-सुबह ही उन्होंने दयाले को जा जगाया। और फिर वह मंडली जंगल की सैर को निकल पड़ी।

दयाले को यह अच्छी तरह पता था कि कई दिनों से नाथ की तबीयत ठीक नहीं। पर जंगल की सैर और पीलू का मजा रोज-रोज तो नहीं मिलता था। छुटपन की बात कुछ और थी, पर अब तो उसके साथी पहले की तरह बेकार नहीं थे। संयोग से जो अवसर मिल गया तो किस प्रकार यह मंडली वापस आ जाती। सैर का यह मौका चूंकि बड़ी चाहत के बाद मिला था, और उस पर पीलू का आकर्षण। पता नहीं यह अवसर फिर कभी हाथ आए या न आए। सो उन्होंने जी भरकर पीलू खाए और गीतों का जश्न मनाया। रात भी चांदनी थी। किसे याद रहती वापस आने की। दयाले के दूसरे साथियों को भी घर आने पर डांट-फटकार पड़ी होगी, पर वह सोच रहा था यह नाथ मेरा क्या लगता है, जिसने आते ही चिमटे से मेरी पिटाई कर दी?

नाथ को दयाले पर पहले इतना गुस्सा शायद ही कभी आया हो, पर गुस्से का कारण भी तो था क्योंकि सारा दिन बीमारी की हालत में उसे किसी ने पानी का घूंट भी नहीं पिलाया था और ठाकुरद्वारा

सिख गुरुओं ने एक ओर तो पंजाब के कोने-कोने में परमार्थ का मार्ग प्रदर्शित किया था दूसरा ओर उन्होंने सामान्य जनता को अज्ञान और आडम्बर की दलदल से निकालकर सहज-मध्य मार्ग पर चलाने का प्रयास भी किया। परन्तु परम्परा से ही गुलाब के साथ काटे और गाय के स्तनों के साथ कीड़े चिपके रहते हैं। कुछ समय बाद गुरु-परिवारों में ऐसे लोग भी पैदा हो गए जिनकी दृष्टि स्वार्थ, ईर्ष्या या लोभ से ऊंची न उठ सकी। जिन्होंने कभी भी अपना द्वेषी स्वभाव न छोड़ा और न ही कभी अपने महापुरुषों के पदचिह्नों पर चलने का प्रयास किया।

सिख-इतिहास में ऐसे अनेक लोगों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने गुरुओं के जीवन-काल में भी तथा उनके पश्चात् भी उनकी महानता का अनुचित लाभ उठाने का प्रयास किया। 'मोहरी मोहन' भाइयों से लेकर 'धीरमल और रामराय' तक अनेक व्यक्ति इस प्रकार के आचरण के प्रमाण हैं।

सिख गुरुओं के समय में तो 'गुरडम' की प्रथा सीमित ही रही थी पर उनके पश्चात् का इतिहास बताता है कि इस प्रकार के गुरुपने ने इतनी धांधली मचा दी थी कि सर्वसाधारण के लिए असली और नकली का अंतर करना कठिन हो गया। किसीने 'बेदी', किसी ने 'सोढी' और किसीने 'भल्ला' या 'त्रेहण'[१] का लेबुल मस्तक पर लगाकर भोली-भाली सिख-जनता को दोनों हाथों लूटना शुरू कर दिया। क्या पंजाब में और क्या पंजाब के बाहर, स्थान-स्थान पर इस प्रकार की गुरडम की दुकानें खुल गईं, जिनके वैभव को देखकर भक्तों की आंखें चौंधिया जातीं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ एक गुरवंशधारियों ने यथार्थ रूप से अपने पूर्वजों के उपदेशों पर चलते हुए धर्म का प्रचार किया, पर इनकी तुलना में अधिक संख्या उन लोगों की थी जो गुरुपन के नाम पर धन-दौलत और प्रतिष्ठा एकत्र करने में लगे रहते थे।

आज के लगभग पौनी शताब्दी पूर्व पंजाब में गुरडम की यह

१ सिख-गुरु इन्हीं चार वंशों में उत्पन्न हुए थे।

बीमारी इतनी बढ़ गई थी कि इसका प्रभाव काबुल, कंधार और गजनी के सिखों तक जा पहुंचा। विशेष रूप से गुरुवंश के वे लोग, जो शिक्षित और चतुर थे, अंग्रेजी सरकार की दृष्टि में अपना प्रभाव जमाने में भी सफल हो गए। अंग्रेजी सरकार को ऐसे देशी सहायकों की हमेशा जरूरत रहती थी जिनके पीछे अन्धविश्वासी लोगों का समूह हो। ऐसे लोगों पर उनकी विशेष कृपा होती थी। बड़े-बड़े सम्प्रदायों के मुखिया अपनी इसी महानता के कारण सरकार की ओर से सम्मानित होते थे। इस प्रकार समय पाकर गुरुवंशधारियों के लिए गुरुडम की यह प्रथा सोने के अंडे देने वाली मुर्गी बन गई, जिसे संभाले रखने के लिए वे लोग अपने दायरे को बढ़ाने में दिन-रात जुटे रहते। फलतः पंजाब की सिख-जनता उस जमाने में काफी हद तक सिख-जीवन से टूटकर गुरुडम का शिकार बन गई। विशेष रूप से पश्चिमी पंजाब के सिखों पर 'सोढी साहबजादों' का प्रभाव बहुत अधिक था। इनमें से कुछ सोढी तो इतने धनवान हो गए थे कि उनका वैभव राजाओं के वैभव की स्पर्धा करता था। महलों जैसे इनके मकान, हजारों बीघे जमीन, यहां तक कि एक-दो के दरवाजों पर हाथी तक बंधे दिखाई देते। ये लोग राजाओं-नवाबों की तरह बड़े-बड़े शिकारी दल लेकर शिकार खेलने निकलते थे।

जब भी यह समाचार मिलता कि अमुक 'महाराज' की सवारी आ रही है, श्रद्धालु व्यक्ति चार-चार, पांच-पांच कोस आगे आकर उनका स्वागत करते। और उन्हें बड़ी धूमधाम से लाया जाता। शहनाई और शब्द-कीर्तन की गूंज तथा आतिशबाजी की चकाचौंध में महाराज की सवारी चलती। पालकी पर फूलों, बताशों और पैसों की वर्षा की जाती, चंवर-छत्र झुलाए जाते और शतरंज घोड़ियां पालकी के आगे-आगे करतब दिखाती चलतीं।

जिन गांवों के पास से सवारी निकलती वहां श्रद्धालु बड़े उत्साह से दर्शन के लिए आते, जिनकी भेंटों से महाराज की पालकी भर जाती। अंततः इसी धूमधाम में जुलूस अपने ठिकाने पर पहुंचता।

दिन का समय महाराज अपने दल-सहित शिकार में गुजारते और शाम को अपने निवास-स्थान पर लौट आते, जहां हजारों की गिनती में लोग प्रतीक्षा में विह्वल दिखाई देते, जिन्हें वे अपने उपदेशों और

बरदानी द्वारा इस्तेमाल करते। थोड़ी बड़ी कानी अथवा जिला-जैलदारों की मर्जी के अनुसार कहीं एक दिन, कहीं दो दिन और कहीं आठ-आठ दिन तक रहने का कार्यक्रम होता, जो भी नगर की अनेक आवश्यकताओं से, यहीं तो 'मजदूर' के पास समय का अभाव रहता था, क्योंकि उन्हें और भी तो अनगिनत सभी का उद्धार करना होता था। प्रस्थान करने से पहले 'कार-भेंट' का समारोह बड़ी धूम से मनाया जाता। 'कार-भेंट' का अर्थ है अपनी कमाई का दसवां हिस्सा गुरु को भेंट करना। यह शब्द जितना छोटा है, इसका फैलाव उतना ही बड़ा है। इसकी प्रथा कब से चली, कैसे चली? इस विषय में अनेक मत हैं। वस्तुतः 'कार-भेंट' इनकमटैक्स का ही दूसरा नाम था। पर सरकारी टैक्सों जैसी कोई रियायत इसमें नहीं थी। इसकी अदायगी न तो स्थगित की जा सकती थी न ही किश्तों द्वारा हो सकती थी। एकमुश्त और निश्चित समय पर भुगतान किया जाना अनिवार्य था।

'कार-भेंट' की सीमा केवल दसमांश पर ही समाप्त नहीं हो जाती थी, इसकी और भी अनेक शाखाएं थीं, विशेष रूप से 'गोलक' प्रथा। हर एक श्रद्धालु इस कार्य के लिए अपने पास एक गोलक (सन्दूकची) रखता था, जिसमें हर छमाही, समावर्तन पर या अन्य किसी भी दुख-सुख के अवसर पर इस गोलक में कुछ न कुछ डालना आवश्यक था। जब भी कार-भेंट का समारोह आरम्भ होता, अगणित गोलकें महाराज के सम्मुख खोल दी जातीं। जितनी अधिक कार-भेंट, उतनी ही अधिक कृपा-दृष्टि। जितनी भारी गोलक, उतने ही अधिक वरदान।

'कार-भेंट' का जब समारोह समाप्त होता तो महाराज के अनेक घोड़े और खच्चरें नकदी और अन्य पदार्थों से लद जातीं।

जेहलम जिला की
और पिंड दादनखान। [illegible]
किनारे पर बसी हुई [illegible]
महत्त्वपूर्ण कस्बा है, [illegible]
मुकाबला करती है।

[illegible] ह—जेहलम, चकवाल,
अधिक आबादी नदी के
[illegible] सोडियां' नामक
एक अच्छे शहर का

सरकारी कागजों और जनश्रुत के अनुसार आज से दो-तीन शताब्दियों पूर्व यहां कोई आबादी नहीं थी। नदी के किनारे से लेकर—जो यहां से लगभग तीन मील की दूरी पर है, यह सारा कस्बा दूर तक घने जंगल के रूप में था, और इस विषय में बहुत-से प्रमाण मिलते हैं कि इस जंगल में उन दिनों हिरण बहुतायत से पाए जाते थे इसलिए इसे 'हिरण जंगल' नाम से पुकारा जाता था, जो पीछे 'हिरणपुर' प्रसिद्ध हुआ।

उस जमाने में दूर-दूर से हिरणों के शिकारी यहां आया करते थे। यह बात भी सुनी जाती है कि उन दिनों आसपास कोई बस्ती न होने के कारण शिकारी दलों को बड़ी असुविधा होती थी। और इस असुविधा को दूर करने के विचार से किसी धनिक 'सोढी' ने एक ऊंचे स्थान पर जो कभी बस्ती की शक्ल में रह चुका था और बाद में बाढ़ से नष्ट हो चुका था—एक सराय बनवा दी, जो 'सोढियों की सराय' के नाम से प्रसिद्ध थी और जिसकी टूटी-फूटी चारदीवारी आज भी कस्बे के पश्चिम की सीमा पर मौजूद है। किस सोढी ने यह सराय कब बनवाई, इतिहास इस विषय में चुप है।

समय बीतता गया, नदी किनारे बसे हुए लोग जैसे-जैसे बाढ़ों की मार खा-खाकर उजड़ते गए, वैसे-वैसे वे दूर जाकर बसने लगे। उन्हीं उजड़े हुए लोगों में से कुछ ने अपने निवास के लिए सोढियों की सराय का आश्रय लिया। शायद इसलिए कि यह सराय एक ऊंचे ठिकाने का क्षेत्रफल काफी चौड़ा और निरापद था। इस कारण यहां की आबादी जल्दी ही बढ़ गई, और यह कस्बा 'हिरण जंगल' के कारण 'हिरणपुर' नाम से प्रसिद्ध हुआ। आबादी की नींव किसी सोढी ने डाली थी, इसलिए 'सोढियां' विशेषण इसके साथ जुड़ा चला आ रहा है।

केवल सोढियों की सराय के कारण 'सोढियां' विशेषण जुड़ गया हो इतना ही पर्याप्त नहीं लगता। यह भी संभव है कि उस सराय की तरह आबादी की नींव भी किसी सोढी ने ही डाली हो। इस विषय में कुछ प्रमाण मिलते हैं। पहला यह कि 'सोढियों' की गली कस्बे के ठीक बीच में है। दूसरा यह कि इस गली के बहुत-से घर—जिनमें से कुछ गिर गए हैं—पुरानी कला के और नानकशाही ईंटों के बने हुए हैं।

तीरता, इनके कुछ भवनों की बनावट बहुत ही विशाल और सुन्दर किया की है, जो इस कथन को प्रमाणित करती है कि यहाँ के कोठी किसी समय में ऐश्वर्य के शिखर पर पहुँचे हुए थे।

आज हरिपुर में कोठियों के खंडहर ही नज़र दिखाई देते हैं। जिसकी जीविका चलते-फिरते 'गुरुदम' के कारण चल रही है, जिसे 'सिंह-सभा' आन्दोलन ने लगभग समाप्त ही कर दिया है। कारण में कोई दो का यह यहाँ कोई महत्त्व नहीं है, न ही उसमें कोई ऐश्वर्य का कोई विशेष चिह्न ही है। हरिपुर से जिस तरह हिरणों का नाता टूट चुका है उसी तरह कोठियों का भी।

"समय आन्दोलनों को जन्म देता है और आन्दोलन वर्तमान को।" मौलाना मुहम्मद ... ने यह बड़े मार्के की बात कही है। अगर यदि 'सिंह-सभा' आन्दोलन को जन्म न देता तो गुरुदम-परिवार पर यह बुरे दिन कभी न आते। जैसे-जैसे सिंह-सभा का आन्दोलन जोर पकड़ता गया, लोगों की आँखें खुलती गईं। एक बार आँखें खुलने की देर थी, कि हर किसीको यथार्थ की समझ आने लगी। एक जमाना था कि गुरुवंश परिवार के लोगों के विरुद्ध कोई जबान तक नहीं हिला सकता था, पर सिंह-सभाइयों के धारावाहिक प्रचार ने लोगों को इतना निडर बना दिया कि कल तक जो लोग कार-भेंट या कमिया भेंट करने के साथ मंच पर खड़े होकर बाँहें उठाकर, गले फाड़-फाड़कर, गुरुदम-के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करने लगे। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही वर्षों में भारी उथल-पुथल मच गई, गुरुदम की दुकानें उठ गईं, गुरुवंश के नामधारी गुरुओं के दौरे घटते-घटते समाप्ति के निकट पहुँच गए, और उनके ठाट-बाट की जगमगाहट घटती-घटती ठंडी राख बनकर रह गई। कार-भेंट की प्रथा या तो समाप्त हो गई या काबुल-कंधार आदि नगरों में अथवा उन थोड़े से गाँवों में शेष रह गई जो शहरी प्रभाव से दूर थे।

किसे आशा थी कि गुरुओं की सन्तान इस प्रकार समय के चक्कर में आ पड़ेगी। फलतः परिस्थितियों से बाध्य होकर गुरुवंशियों ने जीविका के प्रश्न को अन्य उपायों से सुलझाना आरम्भ किया। घर की जमा-पूंजी जैसे-जैसे कम होती गई वैसे-वैसे नई पीढ़ी में से किसीने दुकान खोल ली तो किसीने सरकारी नौकरी में पनाह ली।

आन्दोलन के उस बवंडर से हिरणपुर भी सुरक्षित न रहा। जिन ड्रियों को उस बस्ती का स्थापक होने का गर्व था, उनका आसन भी डोलने लगा तो किस प्रकार वे वहां टिक पाते? धीरे-धीरे हिरण- की बस्ती अपने संस्थापकों से लगभग खाली हो गई। जो बचे-खुचे गए वे अपने गुरुद्वारे के भरोसे या जमीन-जायदाद के सहारे दिन टने लगे।

'बाबा सुखदेवसिंह' के माता-पिता भी उन बचे-खुचे लोगों में से जिन्होंने कभी अच्छे दिन देखे थे। दूर-दूर तक जिनके श्रद्धालु फैले र थे और घर बैठे ही जिन्हें नौ निधियां, अठारह सिद्धियां प्राप्त थीं।

बाबा सुखदेवसिंह का बचपन तो आनन्द से बीत गया परन्तु युवा- स्था आने पर जब मां-बाप का साया सिर पर न रहा तो उनकी अमा- जी को हवा लगने लगी। एक तो जवानी का रंग, दूसरा हाथ रोकने ला कोई नहीं, और तीसरा इकलौते बेटे के हाथ में मां-बाप की रासत आ गई। अनकमाई दौलत को फूंकते किसे दर्द होता है? बाबाजी के दिन और रातें रंगीन स्वप्नों की तरह बीतने लगे। एक ओर आमदनी के दरवाजे बंद होते गए, दूसरी ओर खर्च के किवाड़ खुलते गए। आखिर कितने दिन यह खेल चलता? बालों की कालिमा में जब सफेदी की चमक मानो शुरू हुई तो उस समय तक सोने-चांदी की चमक समाप्त हो चुकी थी। सोच-समझकर चलते तो शायद बुरे दिन न देखने पड़ते। अपनी जमा-पूंजी को सावधानी से खाते तो जीवन आराम से कट जाता। परिवार भी तो कोई बहुत बड़ा नहीं था। तीन प्राणी थे, एक स्वयं, एक लड़का और एक लड़की, बस। पर जहां 'माले मुफ्त, दिले बेरहम' वाली बात हो जाए वहां क्या हो सकता है? बड़े घरों की जूठन भी क्या कम होती है? माना कि जवानी के नशे में बाबाजी ने दौलत को अपने हाथों लुटाया था, पर इतने पर भी थोड़ी-पूंजी और घर का मकान बचा रह गया—यही 'सोढ़ियों की हवेली' बाबा सुखदेवसिंह के पूर्वजों की निशानी थी।

४

हिरणपुर और मलिकवाल, इन दो कस्बों को नदी की धारा ने

पृथक् किया हुआ है। उत्तर वाले किनारे से पुल एक मील की दूरी
मलिकवाल है और पश्चिम के किनारे से कुछ दूर हटकर हिरणपु
उस पार का कस्बा गुजरात जिले में है और इस पार का जेहल
जिले में।

हिरणपुर को जिस तरह सोढियों ने बसाया था, लगभग उ
तरह मलिकवाल को 'टिवाणे मलिकों' ने। इसी कारण इस बस्ती
नाम 'मलिकवाल' पड़ा। हिरणपुर की तरह मलिकवाल भी नदी
थपेड़ों से अनेक बार उजड़ा है और फिर से बसा।

'टिवाणा' खानदान के जिस पूर्वज ने मलिकवाल की नींव रख
थी, उसके पश्चात् की पीढ़ियां बहुत सम्पन्न थीं। विशेष रूप
वर्तमान पीढ़ी तो ऐश्वर्य के शिखर पर पहुंच चुकी है। किम्वदन्तिय
के आधार पर टिवाणे पूर्वकाल में किसी हिन्दू राजपूत वंश से सम्बन्धि
थे। जो, कहा जाता है कि मुगल राज्य के समय मुसलमान हो गए
और इस कारण उन्हें अच्छे सरकारी पद प्राप्त हुए थे। जिला गुजरात
का यह क्षेत्र, जहां मलिकवाल बसाया गया, उन्हें सरकारी सेवाओं
बदले जागीर के रूप में प्राप्त हुआ। टिवाणों अर्थात् मलिकों को प्राप्त
यह वंश-परम्परागत सम्मान अंग्रेजी राज्य में अधिक लाभप्रद सिद्ध
हुआ। कहा जाता है कि सन् ५७ के गदर के समय टिवाणों ने अंग्रेजों
की बहुत सहायता की थी, जिसके बदले में अंग्रेजी सरकार ने न केवल
उन्हें जागीरें दीं, बल्कि बड़े-बड़े सरकारी पद भी।

५७ के विप्लव से ५७ वर्ष बाद, अर्थात् सन् १६१४ में जब
महायुद्ध के समय टिवाणों के भाग्य का सितारा और भी चमका,
अंग्रेजों को पंजाब से रंगरूट भरती करने की आवश्यकता पड़ी
युग 'मलिक उमरहयात' की पीढ़ी का था, जो बहुत
के कारण न केवल समूचे गुजरात जिले में ही सम्मानित
जेहलम से लेकर रावलपिंडी तक उसकी तूती बोलती थी।
पुत्र और भतीजे सरकारी पदों को सम्भाले बैठे थे। कहना
फौजी कर्नों के मामले में 'उमरहयात टिवाणा' का
सर्वप्रथम था।

जब तक युद्ध चलता रहा, लगभग उतने
का दौरदौरा रहा। बड़े-बड़े राजभवनों में होड़-सी

बढ़कर रंगरूट भर्ती कराता है। यही होड़ पंजाब के इन दोनों जिलों—जेहलम और गुजरात में चल रही थी। जेहलम का जिला यद्यपि छोटा है पर इस जिले की स्वास्थ्यप्रद जलवायु के कारण यहां के निवासी बड़े स्वस्थ और कद्दावर होते हैं। विशेष रूप से मुसलमान वर्ग के लोग। इस कारण भर्ती का बहुत-सा दारोमदार इसी जिले पर समझा जाता था। यही कारण था कि एक ओर सोढ़ी साहबजादे, दूसरी ओर गुजरात जिले के टिवाणे भी इस जिले पर अपने अमल करते रहते थे। यह क्षेत्र चाहे उनका नहीं था, पर भर्ती होने वाले क्योंकि मुसलमान अधिक थे, इसलिए टिवाणों को यहां सफलता अधिक मिलती थी। सोढ़ियों को जो थोड़ी-बहुत भर्ती मिलती वह केवल हिन्दू-सिख जनता में से ही। पर मुसलमानों की तुलना में इनकी जन-संख्या आटे में नमक के बराबर थी।

हिरणपुर, जो कभी सोढ़ियों का गढ़ समझा जाता था, आज चाहे उस स्थिति में नहीं था फिर भी आसपास के इलाके में उनका प्रभाव शेष था। रंगरूट भर्ती कराने में अपने प्रभाव का वे भी प्रयोग कर रहे थे।

हिरणपुर के बाबा सुखदेवसिंह भी उन दिनों भर्ती के आन्दोलन में सक्रिय थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उन्हें मनचाहे रंगरूट न मिल सके, फिर भी जहां तक अपना घोड़ा दौड़ा सके, दौड़ाने में उन्होंने शिथिलता नहीं की। प्रारम्भ से ही स्वाभिमानी और हठ के पक्के थे, जिस काम में एक बार लग जाते, पीछे हटना नहीं जानते थे। मलिकवाल के टिवाणों से, बाप-दादे के जमाने से उनकी प्रतिस्पर्धा चली आ रही थी। जब कभी भी वे अपना दरबारी चोगा पहनकर किसी अफसर से मिलने जाते तो वहां मलिकवाल का कोई न कोई टिवाणा अवश्य ही उपस्थित होता। बाबाजी का चोगा उन्हें फूटी-आंखों नहीं सुहाता था। अपने सामने वे और किसी को गिनती में लेते ही नहीं थे।

बाबाजी भी तो अपने को किसीसे कम नहीं समझते थे। माना कि समय ने उन्हें शक्तिहीन कर दिया था, पर थे तो आखिर सोढ़ी वंश के सितारे ही। फिर भला वे किसी का रौब क्यों मानते? बहुधा कहा करते—"टिवाणों में मेरे से अधिक है ही क्या? मात्र यही कि

के तैसे से कूटे पर भर्ती के काम में सरकार की अधिक सहायता कर स
हैं ?" पर क्या भर्ती का काम इतना कठिन था कि जिसे मोतियों क
यह गुलदीपक न कर सकता ? बाबाजी ने एक बात तो छाती पर हाथ
मारकर एक भरी सभा में कह दिया था—"यदि टिवाणों से दुगने
भर्ती न दूं तो मुझे 'मोदी' न कहना।" और अपने किए हुए इसी प्रण
को पूरा करने के लिए बाबा गुलदेवसिंह ने इन दिनों दिन-रात एक कर
रखा था। केवल रंगरूट भर्ती कराने में ही नहीं, 'वारफंड' के लिए
चन्दा एकत्र करने में भी उन्होंने कोई कसर न छोड़ी।

सरकार को प्रसन्न करने के विचार से अथवा टिवाणों को नीचा दिखाने के लिए बाबाजी ने भर्ती के लिए अपना सब कुछ जुए के दांव पर लगा दिया। किसी समय की सविता उनके पास कुछ पुरी थी, हिरणपुर की पक्की आबादी में दो-एक टूटे-फूटे मकान भी थे और वह सब उन्होंने रंगरूटों की जेबों में भर दिया। यदि कुछ बचा तो पूर्वजों की एकमात्र निशानी— यही हवेली। सम्भव है कि वह भी कभी हाथ दांव पर लग जाती जबकि इतना कुछ करने के बाद भी वे कुछ अधिक सफलता नहीं पा सके थे, परन्तु इस हवेली के साथ उनकी प्रतिष्ठा, सम्मान और पूर्वजों का नाम जुड़ा हुआ था, यही सोचकर वे इसे नहीं खोना चाहते थे।

'तो क्या टिवाणों को नीचा दिखाते-दिखाते मुझे खुद ही नीचा देखना पड़ेगा ?' यह एक ऐसी चिंता थी जिसने बाबाजी की नींद और भूख को हराम कर रखा था। उनकी दृष्टि में ऐसी पराजय से तो मृत्यु ही अच्छी थी।

सोचते-सोचते उन्हें एक और ढंग सूझा जिसकी सहायता से न केवल टिवाणों का गर्व तोड़ा जा सकता था, बल्कि अपने भविष्य को चार के स्थान पर आठ चांद लगाए जा सकते थे। उनका पुत्र 'सुदर्शन' मैट्रिक में पढ़ रहा था। बाबाजी ने झटपट फैसला कर लिया कि स्कूल से निकलते ही उसे कालिज में भर्ती करवाएंगे और बी० ए० तक उसे अवश्य पढ़ाएंगे, चाहे इसके लिए उन्हें हवेली ही क्यों न बेचनी पड़े। टिवाणों के लड़कों में कौन-से सुरखाब के पर लगे हैं बड़े-बड़े सरकारी पदों पर जा डटते हैं। बेशक यही न कि 'उमरहयात' ने उन्हें चार अक्षर पढ़ा दिए हैं। उन्होंने यदि अपने लड़कों को दस-दस कक्षाओं तक

पढ़ाया है तो मेरा बेटा चौदह पढ़कर वाईसराय की कौंसिल में बैठेगा। फिर देखूंगा कि कैसे मेरे सामने ये लोग टिक पाते हैं।

परिस्थिति यदि पहले जैसी होती तो कालेज की पढ़ाई कराना उनके लिए कोई कठिन बात नहीं थी। परन्तु जिस ढंग से उन्होंने सरकार-पूजा के हवनकुंड में धन की आहुति दी उससे उनकी आर्थिक अवस्था और भी खराब हो चुकी थी। पर हीरे की खान खोजने के लिए किसे पहाड़ों की खाक नहीं छाननी पड़ती है। वे सोचा करते 'सरकार की एक बार कृपादृष्टि होने भी देर है सब कुछ ठीक हो जाएगा।'

५

भाई-बहन, दोनों में गहरा स्नेह था। आयु में भी कोई विशेष अन्तर नहीं था। सुदर्शन बीरो से केवल दो साल बड़ा था।

बीरो का पूरा नाम 'रघुबीर कौर' था, पर उसे सब इस संक्षिप्त नाम से ही पुकारते। बचपन में ही मां के न रहने पर घर का सारा भार सिर पर आ जाने के कारण वह अपनी आयु की लड़कियों से कहीं अधिक समझदार और सयानी थी। गांव की लड़कियां चेतना की दृष्टि से बहुधा अभावग्रस्त होती हैं, पर इस बीरो को प्रकृति ने न जाने कैसा मस्तिष्क दिया था कि वह नागरिकों के भी कान काटती थी। बात अभी दूसरे के मुंह में ही होती थी वह उसका भाव भांप जाती। स्मरण-शक्ति उसकी इतनी प्रबल थी कि कोई भी कविता दो-चार बार पढ़ने के बाद उसे कंठस्थ हो जाती। कविता-पाठ में उसकी बड़ी रुचि थी। कहीं से भी कोई नया गीत या नयी कविता मिलती तो बीरो उसे उसी समय अपनी कापी में उतार लेती और उसके बाद मस्तिष्क में।

मां का दुलार दोनों भाई-बहनों के भाग्य में नहीं बदा था, और पिता के वात्सल्य को उनकी व्यस्तता कभी उभरने न देती। इस कारण माता और पिता दोनों का प्यार भाई को बहन से और बहन को भाई को प्राप्त होता। परिणाम-स्वरूप दोनों आपस में इतने घुलमिल गए थे कि किसी भी प्रकार का दुराव-छिपाव या संकोच उनमें नहीं था। हंसी-मजाक से लेकर गम्भीर बात तक वे आपस में निःसंकोच कर लिया करते थे।

सुदर्शन बाबू के बीबी के [illegible] [illegible]
करते थे। अब बीबी के लिए 'ग्रेजुएट' का कर्तव्य भी पूरे [illegible] निभाना पड़ता कि बीबी [illegible] सुदर्शन के अपने सामने बीबी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो गई। [illegible] [illegible] के हाथ में [illegible]

हिरणपुर के लड़कियों का एक ही छोटा स्कूल था जो ईसाई मिशनरियों द्वारा संचालित होने के कारण खास लोकप्रिय नहीं था। जनता कहती थी कि मिशनरी स्कूलों में पढ़ने से लड़कियों को बाइबिल का कुछ ज्ञान मिलता है और वे अपने पूर्वजों के धर्म से विमुख हो जाती हैं। और ऐसे बीबी को बाइबिल सिखा देकर गोरी मेम का नाम बदनाम करना चाहते थे। ये सब सोचकर फिर सुदर्शन यहां किसी बड़े सरकारी पद को सम्मानपूर्वक लेकर कुल का नाम रोशन करेगा, यहां बीबी पूर्वजों से धार्मिक शिक्षा प्राप्त करके गोरी मेम की शिक्षा का पथप्रदर्शन करेगी।

स्कूल के अतिरिक्त लड़कियों के लिए यदि पढ़ाई का कोई प्रबंध था तो वह गुरुद्वारे में ही, जहां एक ग्रन्थी बच्चों पंजाबी पढ़ाता था। वहां पर पढ़ाई-लिखाई से नहीं अधिक समय लड़कियों को उनको भी दे घर का काम-धंधा करना पड़ता। बीबी भी कुछ समय तक वहीं 'स्कूल' में पढ़ी पर उन में से केवल बालिका को वहां कैसे शामिल हो सकता जहां 'क' 'ख' से लेकर गुरुमुखी पुस्तक न ही क्यों बोल जाते थे। और इतनी पढ़ाई तो बीबी ने प्रारम्भिक चार ८ महीनों में ही पूरी कर ली। बाद में उसकी पढ़ाई का उत्तरदायित्व सुदर्शन को सम्भालना पड़ा।

हिरणपुर के डी० बी० मिडल स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर सुदर्शन को 'मस्तोबाल' में गवर्नमेंट हाई स्कूल में भर्ती होना पड़ा, क्योंकि आसपास और कोई हाई स्कूल नहीं था। रेल द्वारा हिरणपुर से मस्तोबाल लगभग सवा घंटे का रास्ता था। सुदर्शन सवेरे पौने आठ [illegible] जाता और शाम को ८ बजे की गाड़ी से लौट आता।

रात को दो घंटे उसे बीरो के साथ माथापच्ची करनी पड़ती। एक लम्बे समय तक दोनों भाई-बहनों की पढ़ाई का यही क्रम चलता रहा।

बीरो जाने कब से उस समय की प्रतीक्षा में थी जब उसे अपने भैया का दिन-भर का वियोग न होगा, जब वह सुदर्शन से मनमाना पढ़ सकेगी। पर जैसे ही उसे पता चला कि मैट्रिक पास करने के बाद सुदर्शन लाहौर के किसी कालेज में प्रवेश लेगा तो गहरी टीस उसके मन को भेद गई। परन्तु यह टीस शीघ्र ही एक लुभावनी आशा में बदल गई जब उसने अपने पिता से सुना कि बी० ए० पास करने के बाद उसका भाई कौंसिल का मेम्बर बनेगा और उसकी कुर्सी वायसराय के ठीक दाहिनी ओर होगी, जो टिवाणों को सात पुश्तों तक भी नसीब नहीं हो सकती।

यद्यपि जेहलम का पूरा ज़िला ही राजभक्तों का ज़िला था, जहाँ किसी भी प्रकार के राजनीतिक विचारों के लिए कोई स्थान नहीं था, फिर भी न जाने कैसे देश में घट रही घटनाओं का वृत्तान्त वहाँ पहुँच ही जाता था—विशेषतया विद्यार्थी वर्ग में। सुदर्शन का स्कूल सरकारी था, इस कारण लड़ाई के दिनों में किसी भी विद्यार्थी या अध्यापक के लिए राजनीतिक बातें करने और सुनने पर कड़ा प्रतिबन्ध था। पर इतना होते हुए भी अध्यापक और विद्यार्थी गुप-चुप रूप से आपस में इन प्रसंगों पर बातचीत करते दिखाई देते। लगता जैसे उनकी रुचि लड़ाई के सिवा और किसी विषय में थी ही नहीं। केवल स्कूली वर्ग तक ही सीमित न रहकर ये कथाएं साधारण जनता के कानों और होठों का विषय भी बन चुकी थीं।

एक ओर लड़ाई में अंग्रेज़ों की हार पर हार हो रही थी तो दूसरी ओर लोगों को 'गदर पार्टी' का नाम सुनाई देने लगा। यहाँ तक कि इसकी चर्चा नवयुवतियों के लोकगीतों में भी सुनाई देने लगी, जो चर्खों के ताल पर और लोकनृत्यों में गूंजती रहती:

"भारा गुलदी दा सुन गयी भेटा
अंग्रेज नू पै गयां घाटा
नी गोरयां ने तुर जावना
चल्ले-चल्ले नी गोरयां ने तुर जावना
बाबा बाबे नी कालियां दा राज ...

[illegible] मुराद [illegible] और [illegible] [illegible]

कुछ दिनों [illegible] डोरी को इस प्रकार के [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मुराद के [illegible] में वह [illegible] बना बैठा।

इसमें कोई संदेह नहीं था कि [illegible] डोरी [illegible] और [illegible] [illegible] के द्वारा कुछ [illegible] [illegible] परन्तु [illegible] डोरी के [illegible] विश्वास तो [illegible] भी था कि व्यावहारिक [illegible] में डोरी उससे बहुत आगे है [illegible] कुछ [illegible] की [illegible] [illegible] पहले दिखाई दे रहे थे तो वह डोरी ही की करामात थी।

"तुम्हें हर हालत में पास होना होगा, बेटा!" डोरी ने [illegible] मुरारी ने [illegible] विशेष [illegible] [illegible] पास होने का वादा ही नहीं किया बल्कि तन-मन से वह पढ़ाई में जुट भी गया।

बाबाजी आजकल बहुत अधिक व्यस्त थे। मुरारी की पढ़ाई के अतिरिक्त यदि उनके लिए जीवन और मृत्यु का कोई अन्य प्रश्न था तो भर्ती का काम। इलाके का हर छोटा-बड़ा अफसर तन-मन से इस काम में जुटा हुआ था। विशेष रूप से [illegible] के [illegible] दो दिन को दिन न समझते, न रात को रात। जहां इतनी बड़ी होड़ लगी हुई थी वहां बाबाजी कैसे टिककर बैठ सकते थे? उनका एक पैर घर में होता तो दूसरा गाँवों में।

डोरी साधारण लड़कियों की तरह डरपोक नहीं थी फिर घर में अकेले रात गुजारना उसके लिए अनहोनी बात होती। वह शरीर की

स्वस्थ तो थी ही, क्रान्तिकारी साहित्य पढ़ने से मन की भी दृढ़ हो गई। परन्तु आज तक उसे घर में अकेले रात गुजारने का कम ही अवसर मिला था। जब से सुदर्शन ने ट्यूशन पढ़ने मल्लोवाल जाना आरम्भ किया, कभी-कभी उसे अकेले में रात गुजारनी पड़ती थी। इससे उसे भय तो न लगता, पर सुदर्शन पर क्रोध जरूर आता। इसी बात पर एक दिन बहन-भाई में तगड़ी झड़प हो गई।

सन्ध्या हो चली थी, सुदर्शन जो कल सवेरे से निकला तो अभी तक घर वापस नहीं आया था। इसके अतिरिक्त एक और चिन्ता भी बीरी को पिछले कई दिनों से परेशान कर रही थी। सुदर्शन इन दिनों कितना गम्भीर, कितना रहस्यमय होता जाता था! कहां तो उसकी आकृति से हंसी फूटे पड़ती थी, और कहां यह हाल कि कितना ही बुलाते जाओ, किसी भी बहाने उससे बातचीत शुरू करो, उसके मुंह से 'हां-हूं' के अतिरिक्त कुछ न निकलता।

आज बीरी अपने भाई से निपटने को पूरी तरह तैयार थी। चाहे कुछ भी हो, वह आज इस पहेली का समाधान करके ही छोड़ेगी। वह आज भैया की इस रहस्यमयी खामोशी का ताला तोड़कर ही दम लेगी।

अन्तत: बीरी की प्रतीक्षा समाप्त हुई जब उसने सुदर्शन को आंगन में घुसते देखा। वह बिना कुछ बोले अंदर जाकर लेट रहा।

"आज मैं तुम्हें सोने नहीं दूंगी, भैया।" अंदर जाकर बीरी ने बच्चों जैसे हठ से कहा, "जब तक घंटे दो घंटे तुम मुझसे बातचीत नहीं करोगे।"

"अच्छा पूछो, जो पूछना चाहती हो।"

और बीरी ने उसके सम्मुख पूछनेवाली बातों का एक बहुत बड़ा दफ्तर खोलना शुरू कर दिया। बीच-बीच में कई बार सुदर्शन ने उसे टोका, कई बार किसी बात के उत्तर में उसने कुछ बोलना भी चाहा, पर बीरी ने उसकी एक न चलने दी, जब तक वह सब कुछ कह न चुकी। और जिस बात पर पहुंचकर बीरी ने अपना भाषण समाप्त किया, वह थी—"अच्छा, पिछली बातों को छोड़ो। पहले उस दिन की बात की तरफ आओ। तुम जाते हुए कह गए थे न कि मल्लोवाल में तुम्हारा एक मित्र बीमार है, और जब रात गुजारकर दूसरे दिन

जिस सुरंग का रास्ता तय करने के बाद, जब सुदर्शन ने बीरी को उसके बारे में बताया तो वह उसी तरह बहुत सहमकर उसके पास आ बैठी। बहुत समझाने के बाद जब सुदर्शन का उसकी खुशी लौटने में सफलता हुई।

'तुम्हें क्या पता है भैया किसीके दुख सुख के? मैं पागल हूँ जो फिर क्या हुआ? तुम्हारा होगा तब तुम रो-धोकर फिर और हंसने लगोगे, फिर तुम्हें कुछ भी दुख की खबर नहीं रहती।" और कहते-कहते बीरी सुबकने लगी।

पहले पिस्तौलें, फिर हथगोले-बारूद और फिर बम तक की दुहाई आदि सभी हथियार प्रयुक्त कर चुकने के बाद भी सुदर्शन को सफलता न मिली तो अन्त में उसने उस हथियार का प्रयोग करने की ठान ली जो वह किसी भी हालत में प्रयोग में लाना नहीं चाहता था।

"अच्छा बीरी," वह बोला, "अगर तुम किसी तरह रोना नहीं छोड़ती तो वह भेद मुझे तुम्हारे सामने खोलना ही पड़ेगा।"

सुदर्शन ने विस्तार से बताना शुरू किया कि किस प्रकार इधर पार्टी का सब खेल बिगड़ चुका था। बीरी ने सब बातें बड़े दुख से सुनीं, और पूछा, "तो तुम इसी मामले के बारे में फिर रहे हो इधर-उधर आज-कल?"

"हां, बीरी, इसी मामले में। मास्टर दलीपसिंह पार्टी के लिए बहुत काम कर रहे हैं और मेरा बहुत-सा समय आजकल उन्हीं के साथ लगता है। ये दो रातें भी तो मैं उन्हींके साथ बिताकर आ रहा हूं। पार्टी का ढांचा इस समय बिल्कुल उखड़-पुखड़ चुका है, वह दोबारा खड़ा हो सकेगा या नहीं, इस विषय में कोई कुछ नहीं कह सकता। पर उन लोगों ने हार मानना या साहस छोड़ना नहीं सीखा, इसलिए हमारा मिलना-जुलना अक्सर इसी प्रकार की बातों के लिए होता है। मास्टर दलीपसिंह का ख्याल है कि पार्टी की ओर से शीघ्र ही कोई कदम उठाया जाएगा। और जैसे ही कोई नई योजना तैयार हुई कि हमें कमर बांधनी होगी। यह ठीक है बीरी, कि इधर दसवीं की परीक्षा भी सिर पर आ पहुंची है और मैं कोशिश करूंगा कि परीक्षा में बैठूं भी, पर यदि इस बीच कोई आन्दोलन छिड़ गया और मेरी आवश्यकता आ पड़ी, तो मैं परीक्षा की परवाह नहीं करूंगा।"

देर तक बहिन-भाई आपस में बातें करते रहे, पर बातचीत के मध्य उस बात का कोई उल्लेख नहीं हुआ जिसके विषय में बीरो सबसे ज्यादा उत्सुक थी। फिर उसने स्वयं ही पूछा—"और भैया तराभा के विषय में कुछ पता चला कि वह आजकल कहां और किस दशा में है।"

ओर आंखों से बीरो के चेहरे की ओर देखने के बाद सुदर्शन ने इतना ही कहकर बात समाप्त कर दी, "अभी उसके विषय में कोई कुछ नहीं जानता, पर इतना निश्चित है कि वह अभी तक पकड़ा नहीं गया, नहीं तो अखबारों में छप गया होता। पंजाब-पुलिस ने उसकी गिरफ्तारी के लिए हजारों रुपये का इनाम घोषित किया है।"

बातचीत शायद और कुछ देर चलती पर सहसा एक अतिथि के आगमन ने उस वार्तालाप को रोक दिया।

अतिथि कोई अनजाना नहीं, सुदर्शन का अध्यापक और मित्र मास्टर दलीपसिंह था।

बीरो ने यद्यपि मास्टर दलीपसिंह को आज तक नहीं देखा था, पर उसके विषय में जितना कुछ उसने अपने भाई से सुना था, उससे वह उसे बहुत कुछ जानती थी। बीरो को पढ़ने के लिए बहुत-सा क्रांतिकारी साहित्य सुदर्शन मास्टर दलीपसिंह के यहां से लाया करता था। शायद यही कारण था कि दलीपसिंह के आगमन ने बीरो के चेहरे पर संकोच का कोई चिह्न न आने दिया। जैसे ही सुदर्शन ने उसे बताया, 'बीरो, यह हैं मेरे मास्टर दिलीपसिंह," कि बीरो उसके साथ अपनों जैसा व्यवहार करने लगी। उसके स्वभाव में तो वैसे ही संकोच नहीं था।

सुदर्शन ने पूछा, "मास्टर जी, आप यहां कहां ?"

"तुम्हारे पास ही आया हूं"

"क्यों, सब कुशल तो है ?"

"बात बुरी ही है, नहीं तो क्या जरूरत थी सुबह-सुबह यहां आने की।"

"अच्छा बताइए क्या बात है ?" कहकर सुदर्शन ने बीरो की ओर देखा, जो बड़े ध्यान से सुन रही थी, शायद उसके देखने का मतलब था कि बीरो यहां से चली जाए।

"बीरो," उसने आदेश दिया, "जाओ मास्टर जी के लिए······!"

बीरो [illegible] कैसी बात है जो [illegible] है।" [illegible] बीरो के [illegible] [illegible] को [illegible] कि [illegible] था। [illegible] [illegible] मैं [illegible] कहीं [illegible] [illegible] हूं कि मैं [illegible] कर सकती हूं।"

सुदर्शन [illegible] बीरो के [illegible] था और [illegible] जो कुछ भी दिखाई देता था, उसको [illegible] के विरोध [illegible] वह [illegible] था कि वह उसको [illegible] बीरो की [illegible] इस समय को [illegible] हुआ वह [illegible] इससे पहले कभी भी उसने नहीं देखी थी। और [illegible] शान्ति दिखाई दे रही थी तब उसने बीरो के मुंह से सुना, "मास्टर जी, यदि आपको मुझ पर इतना भरोसा है तो मैं भी विश्वास दिलाती हूं कि आपका भरोसा टूटने नहीं दूंगी। चलो, मैं तैयार हूं।"

"धन्यवाद!" मास्टर [illegible] की बांछें खिल गईं, "बीरो, तुमने मेरी लाज रख ली। वास्तविक बात तो [illegible] तुम्हें [illegible] जाना है, तो तुम्हें वहीं जाकर पता चलेगा, पर मुझे विश्वास हो गया है कि—"

"बस करें मास्टर जी।" बीरो ने बीच में ही टोका, "इसका [illegible] जाने दीजिए। पता नहीं कर भी सकूंगी या नहीं। अच्छा, तो कब जाना होगा [illegible]?"

"आज ही।" मास्टर [illegible] उत्साहित होकर बोला, "बड़े [illegible] की पत्नी है। आज है मार्च की पहली तारीख। रात को वे [illegible] आकर ठहरेंगे, और कल वापस चले जाएंगे। इसलिए हमें दो बजे की गाड़ी में जाना होगा। रात की गाड़ी से तुम दोनों बहिन-भाई वापस आ जाना।"

"अच्छा, तो मैं तैयार हूं।" और वह सुदर्शन की ओर देखकर बोली, "भैया तुम तब तक पगड़ी बांधो, और मैं पेट-पूजा के लिए [illegible] कर लूं। गाड़ी में अभी काफी समय है।"

सुदर्शन पगड़ी बांधने लगा और बीरो रसोईघर में चली गई।

दूसरा भाग

८

"...और यह बात मैं विश्वास से कह सकता हूं कि जर्मनी के साथ अंग्रेजों की लड़ाई अवश्य होगी। अतः हमें चाहिए कि लड़ाई आरम्भ होने से पहले ही गदर की तैयारी कर लें। लड़ाई शुरू होने की आशा दो-तीन साल से पहले नहीं की जा सकती, और इतना समय हमारी तैयारी के लिए कम नहीं है..."

अमेरिका में रहने वाले भारतीयों की गदर पार्टी के प्रमुख नेता 'लाला हरदयाल' ने यह वक्तव्य ३१ दिसम्बर, १९१३ को सैक्रामेंटो (अमेरिका) में दिया था, जिसका श्रोताओं पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। और उसीके फलस्वरूप तत्पश्चात् शीघ्र ही वहां के भारतीयों ने लालाजी की शिक्षा पर अमल करना आरम्भ कर दिया।

लाला हरदयाल दिल्ली के रहने वाले थे, जो आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में प्रविष्ट होने के लिए इंगलैंड चले गए। वहां की पढ़ाई समाप्त करके वे कई दूसरे देशों में घूमते हुए अमेरिका जा पहुंचे। देश-स्वातन्त्र्य की आकांक्षा आरम्भ से ही उनके सीने में मचल रही थी, जो अमेरिका जाकर—अनुकूल वातावरण पाकर और भी भड़क उठी।

स्वतंत्रता का मूल्य स्वतंत्र देशों में ही जाकर जाना जाता है। जैसे-जैसे उन देशों के वातावरण का प्रभाव भारतीयों पर पड़ता गया उनकी आंखें खुलती गईं, और फिर उनकी खुली हुई आंखों में गुलामी

"[illegible] ?" [illegible] पूछा, "ग़दर पार्टी में ?" और वे ध्यान से [illegible]

"जी," युवक ने [illegible] स्वर में कहा, "[illegible] हूं [illegible] है।"

[illegible] रहता है। [illegible] [illegible] लगे।

"बैठ जाओ।"

वह सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया।

"किस लिए आए हो ?"

"जी, दाखिले को।"

एक बार फिर लालाजी के होंठों पर विनोद की मुस्कान दौड़ गई। शायद यही सोचकर कि उम्र तीस से भी कम, और चला है इस पार्टी में भर्ती होने। पार्टी — जिसमें राजाओं को उखाड़ने के लिए फौलादी चट्टानों वाला बल चाहिए, और सर्दियों ऐंठे चेहरे वाला यह लड़का ? इससे तो कोई भी दो थप्पड़ लगाकर [illegible] लालाजी की समझ नहीं आ रहा था कि किस ढंग से वे इस लड़के की समझ दूर करें।

उन्होंने विनोदपूर्ण ढंग से उससे पूछा, "विद्यार्थी हो ?"

"जी, बर्कले यूनिवर्सिटी में पढ़ता हूं।"

"क्या नाम है ?"

"जी, करतारसिंह।"

"कुंआरे हो या शादीशुदा ?"

"जी, मंगनी हो चुकी है, और शादी होने वाली है।"

"अच्छा," (लालाजी मुस्कराकर हंसे) 'मंगनी' और 'शादी' के शब्द मुंह से निकालते समय उन्हें लड़के के चेहरे पर एक अजीब-सी उत्तेजना की झलक दिखाई दी। वे सोच रहे थे अब तो इसे कह ही देना चाहिए कि बेटा गदर पार्टी की गोष्ठियों में हलुआ नहीं बांटा जाता। पर

इसकी बजाय उन्होंने लड़के पर मजाक में प्रश्न किया, "मालूम होता है, शादी करवाने के लिए काफी उतावले हो।"

"आपने ठीक समझा," लड़का सचमुच ही शादी के लिए उत्सुक दिखाई दे रहा था, "मैं जल्दी से जल्दी शादी करवा लेना चाहता हूं।"

लालाजी अब भी स्वाद लेने से बाज नहीं आए, 'शायद' 'शायद तेरी मंगेतर बहुत ही खूबसूरत होगी, क्यों ठीक समझा न मैंने ?"

"शी इज मोस्ट ब्यूटीफुल, सर।" लड़के ने कदाचित् अपनी अंग्रेजी की योग्यता दिखाने को यह वाक्य कहा।

"और मेरा ख्याल है।" लालाजी ने तुर्रा दिया, "होगी भी किसी अमीर की लड़की। खूब दहेज मिलेगा तेरे मां-बाप को।"

"बहुत ही बड़े खानदान की लड़की है जी। शायद आप उसके पैरेंट्स को जानते होंगे।"

दो क्षण के लिए प्राप्त हुए इस मनोरंजन ने लालाजी का दिल बहला दिया था। दो पल और इसे जारी रखने की इच्छा से वे बोले, "शायद जानता होऊं, क्या नाम है लड़की के बाप का ?"

"यमराज।"

"क्या कहा, यमराज ?"

"हां जी।"

"और लड़की का नाम ?"

"लड़की का नाम, मौत।"

दांतों तले उंगली दबाते हुए लालाजी, नीचे से ऊपर तक ध्यान से लड़के को निहारते रहे। उनकी नजर लड़के के [illegible], लड़कियों जैसे चेहरे पर जमी रह गई। फिर उन्होंने पूछा, "पंजाबी हो ?"

"जी।"

"कौन-सा जिला ?"

"जी, लुधियाना।"

"लुधियाना शहर के रहनेवाले हो ?"

"नहीं जी, मेरे गांव का नाम 'सराभा' है।"

"अच्छा, यह बताओ बेटा," इस बार उनके स्वर में विनोद या व्यंग्य की जगह पर गम्भीरता-भरी जिज्ञासा थी, "कोई काम करना जानते हो ?"

[illegible] दुर्भाग्य [illegible]
[illegible] अमरीका [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

इसलिए, [illegible] सरकार के [illegible] शासन से छिपा नहीं था, किन्तु [illegible] हो गई थी। [illegible] गया, वह था [illegible] भारत के [illegible] और घृणा से [illegible] दुर्भाग्य इस [illegible] यह उपाय कि सन् १९१४ के प्रारम्भ में ही देश में [illegible] पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

अन्त वह समय भी आ गया, जिसके विषय में [illegible] ने १३ दिसम्बर, १९१३ को [illegible] युद्ध के [illegible] के विषय में भविष्यवाणी [illegible] समय राजनीतिज्ञों की धारणा थी कि युद्ध इतनी जल्दी शुरू हो [illegible] लालाजी की तरह सभी लोग [illegible] थे कि युद्ध दो-तीन वर्ष [illegible] शुरू होगा।

लालाजी के अमरीका छोड़ने के कुछ चार महीने बाद अर्थात् [illegible] जुलाई, १९१४ के समाचारपत्रों में जब लोगों ने मोटे-मोटे शीर्षक 'यूरोप का युद्ध शुरू हो गया।' पढ़ा तो सभी हक्के-बक्के रह गए। [illegible] उससे एक सप्ताह पश्चात् ४ अगस्त को एक और खबर छपी 'इंग्लैंड भी शामिल हो गया।'

भारत जैसे विशाल देश में, और अंग्रेजों जैसे मजबूत शासन [illegible] विरुद्ध गदर करवाना फिर करवाना भी विदेशों से आकर, यह [illegible] बहुत कठिन काम था। इसकी तैयारी के लिए तो आवश्यक रूप से [illegible] वर्षों का समय चाहिए था। इसीके अनुसार पार्टी की योजना थी [illegible] ही अंग्रेजों का ध्यान युद्ध की ओर होगा, झट से देश में गदर करा दि[illegible]

जाएगा। यह ठीक है कि पिछले एक वर्ष से भी कम समय में गदर पार्टी ने बड़ी तेजी से विकास किया था फिर भी उसे बहुत कुछ करना शेष था। इसलिए युद्ध की घोषणा ने क्रांतिकारी वर्ग में हलचल मचा दी। पर आवश्यक शिक्षा-दीक्षा एक बहुत मुख्य था, पर उससे पीछे हटने का भी तो उनके लिए कोई रास्ता नहीं था।

इस बीच पार्टी कुछ समय के लिए दो गुटों में बंट गई। एक गुट तुरन्त बगावत कराने के पक्ष में था और दूसरा इसकी जल्दबाजी करने का विरोधी था। पर विरोध करने वालों की संख्या इतनी कम थी कि अन्तिम फैसला बहुमतवाले वर्ग के पक्ष में हुआ। अर्थात् गदर की घोषणा को किसी भी दशा में, और किसी भी शर्त पर रोका नहीं जा सकता।

लाला हरदयाल इन दिनों जर्मनी में थे। और वहां बैठे हुए वे अच्छा-खासा काम कर रहे थे जिसका उन्होंने अमरीका रहते हुए किया। उनके काम का असर था अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जर्मनी, टर्की, जापान, ईरान और अफगानिस्तान आदि देशों से गदर के मामले में हर प्रकार की सहायता प्राप्त करना। जिसमें उन्हें काफी सफलता मिल रही थी, या मिलने की आशा बंध चुकी थी।

इसलिए पार्टी के लिए भी उचित यही आदेश था कि गदर की योजना को हर ढंग से पूरा किया जाए। इसलिए परिस्थितियों के मुताबिक युद्ध आरंभ होते ही भारत में गदर करवाने की तैयारी पहले से भी अधिक जोर से शुरू कर दी गई।

युद्ध में अंग्रेजों के शामिल होने के तीसरे दिन बाद, अर्थात् ७ अगस्त को 'पोर्टलैंड' में गदर पार्टी का एक बहुत भारी एकत्रीकरण हुआ, जिसमें शामिल हुए हजारों भारतीयों ने देश लौटने और जाकर गदर आरम्भ करवाने की कसमें लीं। फिर ६ अगस्त को इसी प्रकार का एक और सम्मेलन फ्रेस्नो में, और ११ अगस्त को सैक्रोमेंटो में किया गया। ११ अगस्त का एकत्रीकरण गदर पार्टी के इतिहास में सबसे बड़ा और रिकार्ड तोड़नेवाला था जिसमें नवाब खां, बरकतुल्ला और भगवानसिंह आदि सक्रिय क्रांतिकारियों के जोशीले भाषण हुए। इसी सम्मेलन में भारत को कूच करने का अन्तिम प्रोग्राम तैयार हुआ। यहां तक कि जहाजों के टिकट और अस्त्र-शस्त्र की खरीद के लिए बहुत-सा रुपया भी जमा कर लिया गया। उसके पश्चात् अलग अलग स्थानों पर सम्मेलनों

यह भी एक संयोग ही था कि २१ जुलाई को 'कोमागाटा मारू' कनाडा से चला, और इधर ग़दर पार्टी का प्रधान स० सोहनसिंह भकना अपने बहुत-से साथियों सहित २१ जुलाई को सैनफ्रांसिस्को से 'कोरिया' जहाज द्वारा रवाना हुआ। करतारसिंह सराभा भी भकनाजी के साथ था। इन्होंने सैकड़ों पिस्तौलें और बहुत-सा गोली-बारूद अपने हाथ रखा हुआ था। इसके अतिरिक्त इस जहाज द्वारा और भी बहुत-से अस्त्र-शस्त्र देश में लाए जा रहे थे।

'कोरिया' जहाज अभी अमरीका और जापान के बीच वाले समुद्र में ही था कि वायरलैस द्वारा 'युद्ध शुरू हो गया' का समाचार आ पहुंचा। यहां यह बात समझने वाली है कि सोहनसिंह भकना और उनके कई साथी इस युद्ध पर प्रचार शुरू करने के इरादे से युद्ध छिड़ने से पहले ही अमरीका से चल पड़े थे।

'कोरिया' जहाज जब योकोहामा (जापान) पहुंचा तो इतने में 'कोमागाटा मारू' भी वहां आ पहुंचा। सोहनसिंह और करतारसिंह सराभा की मुलाकात गुरदित्तसिंह से एक होटल में हुई। इस प्रकार 'कोमागाटा मारू' के यात्रियों और ग़दर पार्टी में परस्पर सम्बन्ध पैदा हुआ।

उस समय गुरदित्तसिंह और उनके साढ़े तीन सौ साथी बड़ी मुसीबत में थे। उनके पास पैसे की सख्त कमी थी। ऊपर से जहाज का बहुत-सा किराया उनके सिर पर आ पड़ा। क्योंकि नियत अवधि से उन्होंने अधिक दिन जहाज को व्यवहार में लाए थे। दूसरी घबराहट उन्हें इस बात की थी कि देश पहुंचते ही अंग्रेजी शासन उन्हें दबोच लेगा, जिसके मुकाबले के लिए चाहे सभी लड़-मरने के लिए तैयार बैठे थे, पर अस्त्र-शस्त्रों की कमी से उनका साहस गिरा जा रहा था।

मुलाकात के समय जब सोहनसिंह और करतारसिंह सराभा ने गुरदित्तसिंह से यह घटना सुनी तो भाइयों की हालत ने उनके खून में उबाल पैदा कर दिया। उसी समय २२००० डालर का चैक काटकर भकनाजी ने—जितना अतिरिक्त किराया जहाज के सिर पर चढ़ा हुआ था—उन्हें दे दिया। इसके अतिरिक्त दो सौ पिस्तौलें और गोला बारूद भी दिया।

यह तो सत्य है कि 'कोमागाटा मारू' के यात्रियों पर ज्यादती और जुल्म केवल एक व्यापारिक सिलसिले में हुए थे, पर ग़दर पार्टी

के बाद भी उसके बहुत बाद पहुँचा, क्योंकि भारी के देश पहुँचने से पहले ही इस कारण अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा का तूफान पैदा हो चुका था। विशेष रूप से इस दुर्घटना की जोखमी थी, जो 'बजबज' (कलकत्ता) की बन्दरगाह पर हुई अर्थात् जैसे ही 'कोमागाटा मारू' कलकत्ता पहुँचा कि बहुतों की गोलियों और कई शिकार आए हुए इन असहाय यात्रियों का स्वागत अंग्रेजी सेना की तोपों से हुआ।

इस दुर्व्यवहार की खबरें क्रान्तिकारियों को—जो विदेशों से चल रहे थे—रास्ते में ही पहुँचनी शुरू हो गईं, और खूब बढ़-चढ़कर। जिससे फलस्वरूप बहुत से क्रान्तिकारी समझने लगे कि देश में गदर शुरू हो चुका है, और उनके पहुँचने के पहले ही। पर उनके होश और भी बढ़ गए।

१०

एक ओर विदेशों से क्रान्तिकारियों के जहाज आ रहे थे, दूसरी ओर भारतीय सरकार उनके लिए उपयुक्त स्वागत की तैयारी कर रही थी। क्रान्तिकारियों के इस उद्देश्य का छिपाव भी तो नहीं हो रहा था, बल्कि वह तो ओर से इसका प्रचार करते चले आ रहे थे। जिस भी बन्दरगाह पर उनका कोई जहाज रुकता, वहीं पर वे भीड़ एकत्रित कर अपना प्रचार आरम्भ कर देते। विशेष तौर पर जहाँ कहीं अंग्रेजी छावनियाँ थीं वहाँ तो खूब डटकर अंग्रेजों के विरुद्ध बोलना शुरू कर देते। जिसका परिणाम हुआ कि ५ सितम्बर को अंग्रेजी शासन ने एक नया आर्डिनेंस जारी कर दिया। अर्थात् विदेशों से आनेवाले भारतीयों से निपटने के लिए विशेष अधिकारों की प्राप्ति। इस कानून की सहायता से 'तोशा मारू' जहाज के यात्रियों में से लगभग पौने दो सौ यात्रियों को पकड़कर मिंटगुमरी और मुलतान की जेलों में नजरबन्द कर दिया गया। उसके पश्चात् कई अन्य जहाज 'यासोमा मारू', 'कूरसंग', 'नामसंग', 'मसामसा', 'मासा' और अन्य बहुत-से जहाजों द्वारा हजारों भारतीय देश पहुँचे। '[illegible]' इस संख्या को आठ हजार बताता है और 'लार्ड हार्डिंग' इससे भी अधिक। इनमें से जिस-जिस पर पुलिस को संदेह होता, उसे पकड़ लिया

जाता। बहुत-से अमन-पसन्द को क्रान्ति के लिए वे भाग गए थे, कुछ की भेंट कर दिए गए, क्योंकि अमन-पसन्द का विरोधी दल होता उनके बागी होने का सबसे बड़ा प्रमाण समझा जाता था। गोविन्दसिंह जैसे और अन्य बहुत-से क्रान्तिकारी नेता जहाजों में से ही पकड़कर दीर्घ-विषम समय के लिए नज़रबन्द कर दिए गए। अपना का पकड़ा जाना तो अंग्रेजों की समझ में गदर पार्टी का सिर काटे जाने के समान था।

परन्तु इतनी सख्ती और चौकसी के बाद भी हजारों क्रान्तिकारी सही-सलामत अपने ठिकानों पर पहुंच गए। उनमें से बहुतों पर सी० आई० डी० की निगरानी अवश्य कायम कर दी गई।

करतारसिंह सराभा को, जो अंग्रेजों के लिए घृणा से एड़ी से चोटी तक भरा हुआ था, पकड़ने के लिए पुलिस सबसे अधिक चौकन्नी थी, पर न जाने कैसे वह छलावा बनकर उनकी नजरों से बच निकला।

क्रान्ति की यह योजना लगभग १८५७ के विप्लव जैसी ही थी। इसी कारण देश पहुंचते ही क्रान्तिकारियों ने सबसे पहले जो काम किया, वह था सैनिकों से मेल-मिलाप पैदा करके उन्हें गदर के लिए तैयार करना।

यद्यपि उस समय यह काम आग से खेलने के ही समान था क्योंकि पहले से ही हर एक छावनी में इस प्रकार के लोगों के विषय में कड़ी निगरानी रखी जा रही थी। किसी असैनिक का उन दिनों छावनी में दाखिल होना आसान नहीं था। फिर भी जिन-जिन ढंगों से क्रान्तिकारियों ने वहां तक अपनी पहुंच की, उसे चमत्कार ही कहना चाहिए। विशेष रूप से बीस साल की उम्र के लड़के करतारसिंह ने तो अपने कारनामों से बड़े-बड़े नेताओं को भी दंग कर दिया, जो इतनी सख्ती के होते हुए भी सैनिक बैरकों में जा धमकता, और जिस किसी से भी उसका सामना होता पहली मुलाकात में ही उसे अपनी मुट्ठी में करके लौटता। सिपाहियों की तो बात छोड़ो, सूबेदारों और मेजरों तक को कुछ ही घंटों में न केवल अपने साथ ही सहमत कर लेता, बल्कि शीघ्रता से गदर कराने में उन लोगों के दिलों में आग-सी सुलगा जाता। इतनी जल्दी सैनिकों को अपने साथ गांठ सकने की किसी भी क्रान्तिकारी को आशा नहीं थी जितनी सराभा के चमत्कार प्राप्त हुई।

इस उत्पात का इससे भी बड़ा कारण था उस समय के सैनिक वर्ग की अंग्रेज़ों के प्रति भक्ति। युद्ध में वे उनकी बड़ी विश्वासपात्र बन रही थी। अंग्रेज़ों की हार पर हार हो रही थी। देश के कई बहुमूल्य पलटनें ही सर्वथा होती हुई नष्ट हो चुकी थी, जिससे उस सिपाही प्रभाव पर बड़ा असर था—"अंग्रेज़ गए" यह सैनिक वर्ग में यह विश्वास प्रतिदिन मज़बूत होता जा रहा था, कि युद्ध में जाने का अर्थ है सीधा मृत्यु के मुंह में जाना।

प्रश्न केवल सैनिकों को उकसाने का ही न था, कई और भी समस्याएं थीं जो उस समय क्रांतिकारियों की राह रोके खड़ी थीं। सबसे बड़ी समस्या थी अस्त्र-शस्त्रों की कमी, क्योंकि क्रांति का काम आरम्भ करने के लिए वह बहुत बड़ी मात्रा में चाहिए थे। थोड़े-बहुत जितने अस्त्र-शस्त्र वे लोग विदेशों से लेकर आये थे, वे तो इतनी आवश्यकता के सामने आटे में नमक के बराबर भी नहीं थे। फिर वे इतना भी बहुत-सा माल उन्हें समुद्र में फेंकना पड़ा, जब उन्हें पता लगा कि अंग्रेज़ों की पुलिस न जाने किस समय जहाज़ से उतरते समय या बाहर ले तो उन्हें गिरफ्तार कर ले।

अस्त्र-शस्त्र इकट्ठा करने के लिए कई तरह के उपाय सोचे जाने लगे। देश में एक तो वैसे ही इस चीज़ का अकाल था और यदि कहीं मिलता भी तो बहुत महंगे मूल्य पर। और इतना मूल्य देने का सामर्थ्य भी तो उनमें नहीं था जो अपनी-अपनी पूंजी विदेशों में ही छोड़कर चले आए थे।

ले-देकर देश में एक ही जगह ऐसी थी जहां से अस्त्र-शस्त्र मिलने की कुछ आशा की जा सकती थी, और वह थी बंगाल की राजद्रोही पार्टी, जो उस समय तक कई क्रांतिकारी आन्दोलनों से भिड़ चुकी थी। पर पंजाब के क्रांतिकारियों का उस समय नाम-मात्र ही उनसे सम्पर्क था। सो इस ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। पर इसमें उन्हें सफलता अधिक नहीं हुई। करतारसिंह सराभा ने बंगाल के मुख्य क्रांतिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल के पास जाकर जब पता किया तो उसे बताया गया कि बंगाली क्रांतिकारियों के पास पिस्तौलों की इतनी कमी है कि आपस में आकर कई बार वह अपने ही साथियों की चुरा लेते हैं। अलबत्ता बम बनाने और सप्लाई करने के मामले में वे लोग पंजाबियों

की सहायता कर सके।

परन्तु बंगाल के क्रान्तिकारी इस समय पंजाब के क्रान्तिकारियों पर अधिक विश्वास नहीं करते थे। वास्तव में [illegible] था कि पंजाबी क्रान्तिकारी [illegible] कमजोर हैं, दूसरे अधिक [illegible] के योग्य नहीं माने जा सकते। [illegible] कि अभी तक पंजाब के क्रान्तिकारी [illegible] नहीं कर सके, और [illegible] न होने के कारण [illegible] दूरी से काम कर रहे हैं [illegible] और अविश्वास भी हुआ।

यहाँ तक पंजाब की ग़दर पार्टी को बंगालियों से सहयोग [illegible] का प्रश्न था, इस बात में [illegible] नहीं मिल सकी, [illegible] तक आगे चलकर बंगाली क्रान्तिकारियों के प्रमुख नेता रासबिहारी [illegible] के हाथ में पंजाब ग़दर पार्टी का नेतृत्व नहीं सौंप दिया गया।

प्रारम्भिक दिनों में जब बंगाल से भी [illegible] उम्मीद न रही तो पंजाबी क्रान्तिकारियों ने दूसरी ओर ध्यान दे[illegible] आरम्भ कर दिया। उन्हें निश्चय था कि चाहे किसी भी ढंग से [illegible] हथियारों की प्राप्ति आवश्यक है। ग़दर की तारीख निश्चय होने में जितनी देर हो रही थी उतनी ही उनके ओर असफलता की सम्भावना बढ़ रही थी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए एक के बाद एक, कई डकैतियाँ डाली आरम्भ की गईं।

तब तक छः-सात हजार के लगभग क्रान्तिकारी भारत पहुँच चुके थे जिनमें से बहुत से नजरबन्द कर दिए गए, और कइयों को निर्दोष समझकर छोड़ भी दिया गया। जो अभी तक भी पुलिस की नज़र से बचे हुए थे, उनके नेता करतारसिंह सराभा, हरनामसिंह टुंडीलाट, जगतसिंह, मथुरासिंह, पंडित जगतराम, पृथ्वीसिंह, रूरसिंह चूहड़ [illegible] और गुरमुखसिंह ललतों आदि पूरी चौकसी और तेजी के साथ अपने-अपने काम में जुटे हुए थे। क्रान्तिकारियों के कई और दल अभी तक भी किसी न किसी ढंग से विदेशों से चलकर देश पहुँच रहे थे।

देश पहुँचने के बाद क्रान्तिकारियों ने समय-समय पर सम्मेलन किए, और ग़दर के लिए कई प्रकार की योजनाएँ बनाते रहे उनमें से

जो मोष्टी सबसे महत्त्व रखती है वह नवम्बर के प्रारम्भ में लाजामांव (अमृतसर) में हुई जिसमें बहुमत निश्चय किया गया कि परिस्थितियां चाहे कैसी भी क्यों न हों, १६ नवम्बर को ग़दर का झंडा खड़ा कर दिया जाए। इस कार्य के लिए जो कमेटी बनाई गई, उसके नेता करतारसिंह सराभा, पंडित जगतराम, निधानसिंह और गुजरसिंह भकना नियत किए गए। पर बाद में कुछ रुकावटों, विशेषतया हथियारों की कमी के कारण वह तारीख स्थगित कर दी गई।

तब तक पंजाब की कुछ छावनियों को साथ मिलाने में सफलता मिल चुकी थी। विशेष रूप से मियांमीर (लाहौर) का रिसाला नं० २३ तो करतारसिंह सराभा की प्रेरणाओं के फलस्वरूप १५ नवम्बर को होने वाले ग़दर का प्रारम्भ करने के लिए न केवल तैयार था, बल्कि उतावला भी। कारण ? रिसाले के देसी अफसरों को हर समय चिन्ता लगी रहती थी कि अंग्रेज़ी अफसरों को संदेह हो गया तो उनकी दुर्गति कर दी जायेगी। और जब यह योजना सफल न हो सकी तो उनको गहरी निराशा हुई।

उसके बाद जो बैठक १९ नवम्बर को मोगा गांव (फिरोज़पुर) में हुई उसमें बताया गया कि अस्त्र-शस्त्र प्राप्त करने के लिए रुपये की आवश्यकता है, अतः सरकारी खजानों और शस्त्रागारों को लूटने की योजना को व्यवहार में लाया जाए।

योजना की पहली कड़ी के अनुसार मियांमीर छावनी के शस्त्रागार को लूटने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जिसकी तारीख २५ नवम्बर रखी गई। इस काम की जिम्मेदारी करतारसिंह सराभा और कुछ अन्य नेताओं को सौंपी गई। पर कई रुकावटों के कारण यह प्रस्ताव भी काम में न लाया जा सका।

उसके पश्चात् कार्यक्रम बना कि ३० नवम्बर को फिरोज़पुर छावनी का हथियारखाना लूटा जाए। इस उद्देश्य के लिए निश्चित समय पर क्रान्तिकारियों की टोली के कुछ सदस्य रेलगाड़ी पर सवार हुए, कुछ तांगों पर। परन्तु रास्ते में ही तांगों पर जानेवाले दल की पुलिस से मुठभेड़ हो जाने से न केवल यह मामला भी बीच में ही रह गया बल्कि मुठभेड़ में दो क्रान्तिकारी—पंडित काशीराम और मियां रहमत अली मारे गए और सात पकड़े गए (जिन्हें बाद में फांसी पर लटका

किया गया), आगे हम उसे देखेंगे।

इस दुर्दशा ने गदर पार्टी के कार्यक्रम को अस्तव्यस्त कर दिया। विदेश भर से लोग नेताओं के आने जाने के कारण पार्टी को बड़ी निराशा हुई। पुलिस बुरी तरह लोगों के पीछे पड़ी थी, इसलिए गदर पार्टीवालों को बचने-बचाने पड़ों को जाने लगे, और जो कोई होशियारी से इन दिनों के बावजूद, फ़िरोज़पुर के लोगों का विद्रोह असफलता की ओर बढ़ चुका था। वे कोई सरकारी चौकियां लूटते थे। के गुप्त ठिकाने, और अब कई तरह की योजनाएं बनाते थे। पर किसी भी काम में सफल न होते थे। अन्त में उसके नेता [illegible] को जब ११ दिसम्बर को पकड़ लिया गया (जो बाद में सरकारी गवाह बना) तो पार्टी का संगठन और भी शिथिल हुआ। पर इतनी बुरी अवस्था पर भी यदि क्रान्तिकारियों का उत्साह बना रहा तो इसका बड़ा कारण था करतारसिंह सराभा का व्यक्तित्व, जो फ़िरोज़पुर की दुर्दशा के बाद दिन-रात भाग-दौड़ करते हुए कार्य-कर्ताओं का दिल से हाथ जोड़ने के लिए छावनी में कोशिश करता रहता।

गदर पार्टी के कार्यक्रम का पहला दौर, दिसम्बर १९१४ के अन्त में समाप्त हुआ। पुलिस का लगातार असफलताओं से इन लोगों ने जो सबक सीखा, वह था कि बिना मज़बूत नेतृत्व के और बिना विधिवत् संगठन की स्थापना के, बिना अस्त्र-शस्त्र द्वारा पार्टी को सुसज्जित किए कभी कुछ नहीं बनेगा।

इन बातों को सामने रखकर सन् १९१५ के प्रारम्भ में ही एक नई युक्ति इन लोगों को सूझी, और वह युक्ति थी उस युग के बंगाली राजद्रोहियों के प्रमुख नेता रासबिहारी बोस के हाथों में नेतृत्व सौंपना।

रासबिहारी बंगाल की फ्रांसीसी बस्ती चन्द्रनगर के निवासी थे और फारेस्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट के दफ्तर में हेड क्लर्क का काम करते थे। वे इन दिनों दिल्ली षड्यन्त्र केस (वाइसराय लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के दोष) में भूमिगत थे। उनकी गिरफ्तारी के लिए साढ़े सात हजार रुपये का पुरस्कार घोषित हो चुका था। इस समय वे बनारस में भूमिगत होकर काम कर रहे थे।

रासबिहारी से दूसरे नम्बर के बंगाली नेता थे शचीन्द्रनाथ सान्याल, जिनकी सहायता से करतारसिंह सराभा को 'दादा' तक

पहुँचने का प्रबन्ध किया गया। क्रान्तिकारी उन्हें 'दादा' कहकर पुकारते थे।

यतीन्द्रनाथ दास के साथ ही एक बंगाली युवक भी उन दिनों कलकत्ते से बम-बनाने का काम सीखे हुए था, जिसका नाम था—किन्तु सबके लिए वे 'दादा' थे। वे दोनों युवक कलकत्ता से आगरा भी पहुँच गए थे, जो इस समय और इस दल के साथ रहते थे।

यतीन्द्रनाथ और भगवतीचरण द्वारा बम बनाने के काम के आरम्भ होने से बम बनाने का काम शुरू हुआ—विशेष रूप से दल के लिए बंगालियों की आवश्यकता हुई। उन्होंने पंजाब का केवल बताने का वचन दिया, पर पंजाब जाने के पूर्व वे यहाँ की मिट्टी का पूरा हाल जान लेना चाहते थे। अतः इस कार्य के लिए उन्होंने पहले कलकत्ता की, और फिर विजय को यतीन्द्रनाथ के साथ पंजाब भेजा।

यतीन्द्र और विजय ने पंजाब जाकर पार्टी को विश्वास दिलाया कि लाहौर-अमृतसर में उनकी सहायता भी कर सकता है; पर बंगालियों के बम बनाने के ढंग से। उन्होंने बताया कि बंगालियों की ढंग से बड़ी कमी है, और साथ ही यह स्वीकार भी की कि पंजाब में बम बनाने का काम शुरू करें, जिससे वे लोग उनकी देखरेख में सहायता करें। विजय को इस काम का अच्छा अनुभव था।

बम बनाने के काम में बंगाली विशेषज्ञ यतीन्द्र को न थे, पर वे लोग बहुत बढ़िया किस्म के बम बनाया करते थे। यही कारण था कि इन्सपेक्टर ट्रीलाट को—जिसने अपनी ... रहते हुए यह बम ... कर दिया था—विस्फोट होने से एक आँख खो गई। पर बंगालियों के बम-निर्माण का काम उनकी तुलना में बहुत अच्छा था। डॉ० ... ने अपनी रिपोर्ट में एक स्थान पर लिखा है—"बंगालियों के बम इतने भयानक प्रकार के होते थे कि एक बम के विस्फोट से पूरी एक रेजीमेंट नष्ट हो सकती थी।"

पर बंगाली ढंग के बम बनाने में जो बड़ी कठिनाई सम्मुख आने की संभावना थी वह यह कि इनका ... नहीं रहता था। एक बम के लिए कम से कम एक ८० ... चाहिए थी। और इसमें भी बहुत कमी थी, क्योंकि पार्टी की योजनानुसार ... शुरू करने के समय लाखों बमों की आवश्यकता थी।

रात को ही काम ठीक करके उनके साथ क्रान्तिकारी [illegible] लिया, जो थे—इन्स्पेक्टर [illegible], इन्स्पेक्टर [illegible], [illegible] सिंह, असिस्टेन्ट इन्स्पेक्टर और [illegible]।

और इसके दूसरे दिन सुविख्यात इन्स्पेक्टर [illegible] के मारने की योजना हुई, जिसके अनुसार वे [illegible] की [illegible] करके ⋯ डाका के बम [illegible] हाथ में [illegible] किया। [illegible] के हाथों ने [illegible], [illegible] दूसरा कोई बम [illegible] नहीं रहा था जिससे [illegible] दूर किया जा सके।

अब प्रश्न पैदा हुआ कि डाका डालने की योजना का श्रीगणेश कहाँ से किया जाए। सोच विचार के पश्चात् निश्चय हुआ कि [illegible] जिले में 'साहनेवाल' गांव के एक धनिक को लूटा जाए।

इस स्थान पर डाका डालने के कुछ दिन पश्चात् 'मनसूरां' गांव के एक और धनिक को लूटा गया, यहां से काफी धन प्राप्त हुआ। पर इतना नहीं कि जिससे उनका काम चल सकता, उन्हें तो आवश्यकता थी लाखों रुपये की।

फिर और भी कई छोटे-मोटे डाके डालने के पश्चात् उन्होंने [illegible] फरवरी को भी एक बड़ा डाका जिला अमृतसर के [illegible] गांव में डाला। उसे क्रान्तिकारियों की योजना के सफल होने का आरम्भ माना जाता है।

इसके पश्चात् डाकों का यह सिलसिला तब तक चालू रहा जब तक सराभा ने अपना वह प्रण पूरा न कर दिखाया, जो वह प्रायः कहा करता था कि, "मैं दुश्मनों के अन्दर-अन्दर आपके सामने सोने-चांदी का ढेर लगा दूंगा।"

छावनियों में प्रचार का आन्दोलन तो पहले से ही जोर-शोर से जारी था, और अब पैसे की ओर से भी अधिक कठिनाई न रही तो गोला-बारूद की फैक्टरी में तेजी आ गई, और बनारस से भी गोला-बारूद मिलने की आशा हो गई। अब देर किस बात की थी?

अन्त में १२ फरवरी को दादा की अध्यक्षता में लाहौर के एक गुप्त मकान में बैठक हुई, उसमें बहुत सोच-विचार के पश्चात् यह फैसला हुआ कि २१ फरवरी को सारे देश में सैनिक क्रांति का प्रारम्भ

काम शुरू करने से पहले ही पकड़वा दे उन्हें। यह है कि स्वयं ही कि ग़दर कृपालसिंह जब ठिकाने से बाहर निकल कर भागा तो पार्टी ने कृपालसिंह के खिलाफ एक दल तैनात किया — एक और कार्यकर्ताओं को मालूम करने के बाद से चौकन्ना हो गया था। कृपाल ने पुलिस से विश्वासघात किया हुआ था कि वह तारीख़ से १६ तारीख़ से पहले पहुंचेगा पर उसे मालूम होने से पहले ही तारीख़ १६ के बजाय १६ को पहुंचा।

१९ की सुबह मोची दरवाज़ा वाले मकान पर एक बैठक होने वाली थी, जिसमें नेताओं के बारे का विचारार्थ होना था। इस बैठक के बारे में भी कृपालसिंह को एक सप्ताह के बाद दिया और वह पुलिस की ओर भाग गया। वहां जाकर पुलिस से निश्चित हुआ कि कृपालसिंह मकान में शामिल रहेगा। जैसे ही कार्यकर्ता इकट्ठे होंगे, वह छत पर चढ़कर इशारा करेगा और पुलिस छापा मारकर क्रांतिकारियों को पकड़ लेगी। इस योजना के अनुसार पुलिस कुछ दूर से मकान को घेर कर बैठ गई।

कृपालसिंह जब मोची दरवाज़े वाले मकान पर पहुंचा तो पार्टी के सदस्यों ने उसपर निगरानी शुरू कर दी।

तब तक पार्टी को विश्वास था कि कृपालसिंह को बदली हुई तारीख के बारे में कुछ भी खबर नहीं और वस्तुतः उसे कोई पता नहीं था। इसलिए पुलिस या शासन भी इस कार्यक्रम से अनजान था। पर बात कुछ बिगड़ ही गई। कृपालसिंह ने अपनी चालाकी से एक सीधे-सादे सदस्य से भेद ले लिया और उसने किसी ढंग से यह भी खबर पुलिस तक पहुंचा दी। फलस्वरूप शासन ने तुरन्त सारी तैयारी कर ली।

मोची दरवाज़े वाले मकान पर पुलिस ने शाम को साढ़े चार बजे छापा मारा, पर तब तक सभी क्रांतिकारी न जाने किस रास्ते से गायब हो चुके थे। कृपालसिंह तो पहले से ही 'जान बची लाखों पाए' का विचार करके उड़ गया था।

मकान की तलाशी में से जो कागज़-पत्र पुलिस को मिले, उनके आधार पर शाम के पांच बजे तक हर तरफ समाचार भेज दिए गए। कागज़ों में से खासी जानकारी मिली। सबसे अधिक सावधानी छावनियों में बरती गई। मियांमीर की पल्टन को शाम के ७ बजे फाल इन

ला दिया गया। बुधसिंह को (जिनकी नियुक्ति फिरोजपुर छावनी में की) कैसे यह निश्चय कर लिया गया।

पार्टी की ओर से इस तरह का प्रबन्ध किया गया था कि जैसे ही फिरोजपुर छावनी के पास के ठीक तरह की सूचना का निश्चय हो, [illegible] वे सभी सिपाही और देशी जवान अपने हथियारों पर टूट पड़ें और उनकी सहायता करने के वास्ते [illegible] पार्टी के और [illegible] है। फिरोजपुर के बारे में यह देखना था कि वहाँ पर [illegible] के वास्ते सभी [illegible] भी और कुछ [illegible] हाथ का [illegible] सामान, [illegible] है। इसमें [illegible] करके और [illegible] निश्चय करने का भी प्रबन्ध था।

११ तारीख का कार्यक्रम शुरू होने के साथ [illegible] के [illegible] वह [illegible] पहुँची हुए हो गई। [illegible] कई [illegible] था।

फिरोजपुर छावनी के [illegible] के [illegible] के कई टोलियां आ पहुँची थी। [illegible] करतारसिंह [illegible] रहा था, जो सभी [illegible] और सभी [illegible] और [illegible] पूछता हुआ [illegible] का निरीक्षण कर रहा था। [illegible] करतारसिंह को [illegible] सभी टोलियों के [illegible] थी, जो [illegible] करने [illegible] के [illegible] हुई [illegible] फिरोजपुर पहुंच गई।

करतारसिंह सराभा ने अपने काम को पूरा करने का पूरे ढंग से प्रबन्ध रखा था, जिसके अनुसार रात के ठीक [illegible] बजे [illegible] की [illegible] सिपाहियों का [illegible] निश्चित द्वारा [illegible] स्थान पर पहुंचाया जाना था। [illegible] दूसरे [illegible] पर छोड़कर वह [illegible] की प्रतीक्षा में निश्चित स्थान पर जाकर बैठ गया। [illegible] सिपाहियों की भी प्रतीक्षा थी, जिन्हें रात को इसके साथ रहकर [illegible]

"[illegible]।"

'[illegible]!" सराभा ने [illegible] हुआ [illegible]!"

"[illegible] मुख [illegible] [illegible] नहीं है।"

[illegible] कोई [illegible] नहीं [illegible] दादा को [illegible] नहीं हुई। [illegible] के [illegible] थे।

मोची दरवाजे से [illegible] पहुंचे [illegible] सराभा [illegible]। [illegible] नहीं [illegible] कि दादी दूसरे [illegible] भी [illegible] हुआ था नहीं।

१३

रात्रि का दूसरा प्रहर बीत रहा था, जब सराभा दादा को गाड़ी में चढ़ाकर लौटा। मोची दरवाजे वाला मकान इस समय रहने के खाली नहीं था, इसलिए दादा के आदेश के अनुसार सराभा ने मच्छीहट्टा वाले अड्डे की ओर रुख किया।

वहाँ जब वह पहुंचा तो उसके अन्य दो साथी—हरनामसिंह टुंडीलाट और जगतसिंह सुरसिंही उपस्थित थे।

परिस्थिति हर कदम पर खतरे की ओर बढ़ रही थी। कोई नहीं जानता था कि अगले कुछ घंटों में क्या हो जाएगा। किसी को भी कुछ सूझता नहीं था। क्षण-भर में ऐसी दुर्घटना होगी, इसकी आशा न थी। थोड़ी देर तक तीनों कई प्रकार की माथापच्ची करते रहे।

जाते समय दादा ने जो बातें सराभा को समझाई थीं उसने अपने साथियों के सामने दुहरा दीं। जिनका सार यह था कि इस समय जितनी भी जल्दी हो सके, पुलिस की नजरों से अपने को बचाने की कोशिश करो। जहां भी कोई साथी हो, उसे कहा जाए कि झटपट पंजाब से बाहर हो जाए। साथ ही दादा ने यह चेतावनी दी थी कि

"अरे यार!" टुंडीलाट हंसकर बोला, "पूरे गोबर गणेश रहे तुम।"

इतने निराश वातावरण में भी इन लोगों के चेहरे पर किसी प्रकार की चिंता के चिह्न दिखाई नहीं दे रहे थे। जगतसिंह का दर्द यार मजाक से "गोबर गणेश" कहकर उसकी हंसी उड़ाई जाती थी।

टुंडीलाट ने दोनों को हंसा दिया। कहता गया, "काम कोई मुश्किल नहीं यदि जरा हिम्मत बांधें तो। सन् १९०३ में मैं पेशावर छावनी की पल्टन नम्बर २१ में कई साल तक सिपाही रह चुका हूं। इसलिए मुझे पश्तो अच्छी तरह से आती है। दूसरा पेशावर से लेकर सरहद तक के पठान-गो इलाके से भी परिचित हूं। बाकी रही दाढ़ी केशों की बात, वह तो भाई, इसे कुछ समय के लिए त्याग-कर हमें मुसलमानी हुलिया बनाना पड़ेगा, तभी हम बिना किसी खतरे के काबुल पहुंच सकेंगे।"

"पर चाचा," सराभा ने एक और शंका प्रकट की, "मान लिया कि इस तरह हम पुलिस की नजरों से बचकर रह सकेंगे, पर यह भी तो सोच लेना चाहिए कि काबुल जाने के लिए तो हमें 'जमरौद' को पार करना होगा, जहां की चप्पा-चप्पा जमीन अंग्रेज सिपाहियों से अटी पड़ी होगी।"

"अरे तुम चिन्ता न करो बेटा, इस बात की।" टुंडीलाट उसी हंसी के रंग में बोला, "जमरौद की ओर जाने की हमें आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मैं तुम्हें एक ऐसे रास्ते से ले जाऊंगा जो बिल्कुल सुनसान होगा।"

"वह कौन-सा, चाचा?" जगतसिंह ने पूछा।

"पेशावर कभी गए हो क्या?" टुंडीलाट ने उत्तर देने के बदले पर जगतसिंह से प्रश्न किया।

"नहीं चाचा, मैंने तो वह इलाका देखा ही नहीं अभी तक।"

"तो सुनो।" वह बताने लगा, "पेशावर शहर से पांच मील दूरी पर 'मतनी' नाम का एक गांव है, जो सरहदी इलाके से थोड़ी दूर है। और उस गांव में हमारा एक सहायक भी है, चाहे उसकी सू से मैं परिचित नहीं हूं।" "कौन, चाचा?" सराभा ने पूछा।

"उसका नाम है भाई धन्नासिंह। हमारी पार्टी से चाहे उस

कोई धोखा सम्भव नहीं, पर उनके बारे में सुना है कि सरहद पार करनेवालों की पूरी व्यवस्था करता है। पहले भी कितने लोगों ने सरहद पार की, इसलिए उसी की व्यवस्था से। तो एक बार पेशावर पहुंचने की देर है कि काबुल पहुंचे ही समझो।"

दोनों ने प्रश्न-भरी नज़रों से दुर्गादास को देखा और उनकी हां हां में मिलाई। सर्वसम्मति से फैसला हुआ कि जितनी भी जल्दी हो सके पेशावर के लिए कूच कर दिया जाए।

रेल के सफर को जितना सहल समझा गया था उतना ही वह खतरे वाला था। चाहे इन तीनों ने ही मुसलमानी वेश बना लिया था पर विपत्ति ने पीछा नहीं छोड़ा। पुलिस, सेना और सी० आई० डी० के लोग गाड़ियों में और प्लेटफार्मों पर निगरानी करते हुए घूम रहे थे। सब लोगों की ज़बान पर गदरियों की ही चर्चा थी, हर अखबार के पन्ने इसी विषय से भरे दिखाई दे रहे थे।

रावलपिंडी तक की यात्रा तो जैसे-तैसे कटी, पर इससे आगे रेल से जाना जान-बूझकर मुसीबत को गले लगानेवाली बात थी, पर सफर तो अधूरा नहीं छोड़ा जा सकता था—रेल पर न सही तांगे पर ही सही, नहीं तो पैदल ही।

सरायकाला स्टेशन पर उतर कर ये तीनों तांगे पर सवार हुए, और लगातार बीस-पचीस घंटों की यात्रा के पश्चात् 'जहांगीर' तहसील में जा पहुंचे। जिससे आगे नौशहरा छावनी की सीमा शुरू हो जाने से इन्होंने जंगल के रास्ते पैदल चलना शुरू कर दिया।

नौशहरा से पेशावर तक का सारा इलाका छावनी का रूप होने के कारण पकड़े जाने का हर क्षण खतरा था, इसलिए बस्तियों से दूर, कहीं गधे-खच्चर की सवारी, कहीं पैदल चलते हुए अन्त में ये तीनों पेशावर की सीमा के अन्दर आ पहुंचे।

२२ तारीख का चला हुआ यह काफिला २६ तारीख को पेशावर पहुंचा। चाहे रास्ते की थकावट ने तीनों को अधमरा कर दिया था, पर आराम करना अभी इनके भाग्य में नहीं था। पेशावर में भगोड़ों का पीछा इतनी सख्ती से हो रहा था कि ज़रा-सी लापरवाही करने से पकड़े जाने का खतरा था। फैसला यही हुआ कि रात को ही 'मतनी' पहुंचा जाए। जहां इन्हें अपने शुभचिन्तक भाई 'धन्नासिंह' से न केवल

[illegible]
की थी।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] है। चढ़ाई के बाद उतराई, उतराई के बाद चढ़ाई और इसके [illegible] उतराई। यह क्रम लगातार होने से ही ऊबा जा रहा था। न इसमें कहीं किसी दूसरे व्यक्ति के बोलने की ही आवाज सुनाई दी, जिनसे [illegible] बस्ती का अनुमान लगा सकते। आवाज बस एक ही थी—[illegible] जिसके कारण नहीं [illegible] हो आ रही थी।

तभी बीच पगडंडी पर से उन्हें दूर की दहाड़ जैसी आवाज सुनाई दी—"लोके है यो दोईई!" (कौन हो? कहाँ गये!) [illegible] पुकारनेवाली थी, पर सुननेवाले को तो दिखते नहीं थे। [illegible] के अतिरिक्त अब उन्हें साफ दिखाई दे रहे थे दो ऊँचे लम्बे [illegible], अपनी वस्तुओं की [illegible] और [illegible] लिए [illegible] के [illegible]

लारी मजबूत कर के छूटी जा रही है।

दुरीनाट—जो पठानों के [illegible] के समान तरह के परिचित था—दोनों व्यक्तियों को पीछे छोड़कर आगे बढ़ा और उनसे बोला, "टेकनाड दस।"

'टेकनाड' शब्द 'टेकना' का अनुवाद है, जिसका अर्थ लगाने के [illegible] "दस्तावेज़" की। पठान दोनों के [illegible] के एक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

इतने में देर ही दुरीनाट ने [illegible] कहा कि उस से इतना 'रोशन' (रुपये) सरकारी के सामने कर जा दिये।

उसके कुछ ही देर बाद [illegible] [illegible] इसके [illegible] [illegible] एक और [illegible] का और दूसरा युवक। उसके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

तभी [illegible] [illegible] बायें में अपनी [illegible] था। दूसरा [illegible] का दिखाते हुए दोनों को बारी-बारी से ऊपर से नीचे तक पूरे ध्यान से देखा और फिर उसी कड़कती आवाज में दुरीनाट से दूसरा प्रश्न किया, "कुम कुजा मा रवेम ?" (कहाँ से आ रहे हो)। उत्तर में दुरीनाट पूरी तरह निर्भय होकर बोला, "पेशावर न राहम।" (पेशावर से आ रहे हैं)।

"[illegible] ?" (कहाँ जा रहे हो ?)

"मज़ार-ए [illegible] ।" (मजारी जा रहे हैं।)

दुरीनाट के मुँह से 'मज़ार-ए' शब्द का निकलना था कि पठानों ने ऐसे दोनों को घूरना शुरू किया मानो चोरों को सिपाही सेंध लगाते हुए पकड़ लिया हो। युवक पठान—जो अभी तक पीछे खड़ा था, [illegible]

[illegible] को [illegible] करने के बाद भाई धन्नासिंह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाति का कोई बन्धन नहीं था।

धन्नासिंह ने ये सारी बातें [illegible] बताया कि वह पठान जो [illegible] उसी [illegible] ओर का सिपाही था। यदि वहीं से कोई धन्नासिंह का नाम न लेते तो सम्भव था कि दोनों को ही [illegible] का शिकार बनना पड़ता।

भोजनादि कर लेने के बाद भाई धन्नासिंह ने मकान की उसी छत पर एक [illegible] कमरा खोल दिया, जिसमें पहले से ही काफी पूरे माल का सामान छिपा हुआ था, और दीवारों में उसी तरह [illegible] बड़े हथियार छिपाए हुए थे। यहां इन्होंने [illegible] काटकर कई दिनों की थकावट दूर की।

शाम को वास्तविक बातचीत का क्रम आरम्भ हुआ। [illegible] ने अपना निश्चय प्रकट कर दिया, जो भाई धन्नासिंह के लिए कोई नई बात न थी। वह पहले ही इस इरादे को समझ चुका था।

और उत्तर में भाई धन्नासिंह ने जो कुछ कहा वह इन लोगों के लिए आशाजनक तो था, पर उससे भी बढ़कर निराशा-भरा। सीमा पार करवाना और काबुल तक किसीको पहुंचाना धन्नासिंह के लिए कठिन काम नहीं था, क्योंकि प्रति सप्ताह चाय से भरे हुए कई ऊंट

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मकानों में एक ही कमरा था, छोटा-सा गुसलखाना, यहाँ ये अखबार मंगवाए जाते थे। पर यह तीनों के गुप्तवासी वेश-भूषा में, इसलिए इनका गुरुद्वारे जाना कठिन था। अतः भाई दर्शनसिंह को कह कर उन्होंने गुरुद्वारे से सप्ताह-भर के सभी अखबार मंगवा लिए।

अखबारों की संख्या अधिक नहीं थी। और जितने भी थे वह या तो 'कौमी अखबार' जैसे सरकारी या 'सिविल मिलिट्री गजट' और 'खालसा समाचार' आदि सरकार के समर्थक। अखबार सरकारी थे या अर्ध-सरकारी, पर इनके आधे से अधिक पन्ने ग़दर पार्टी के ही समाचारों से भरे थे, जिन्हें गहरी रुचि से तीनों ने पढ़ना आरम्भ किया।

समाचार एक से एक बढ़कर निराशाजनक थे—"१९ फरवरी को सिंगापुर में ग़दर हुआ। जिसे चौबीस घंटों के अन्दर ही कुचल दिया गया...। मेरठ में रिसाला नम्बर १६ के जमादार नादिर खाँ ने बड़ी बहादुरी से ग़दरियों के गुप्तचर विष्णु गणेश पिंगले को बमों-सहित गिरफ्तार करा दिया...ग़दर पार्टी का नेता अर्जुनसिंह और उसके दो साथी लाहौर के अनारकली बाजार में पुलिस द्वारा मारे गए...बहुत से खतरनाक ग़दरिये—जिनमें मथुरासिंह और करतारसिंह सराबा भी शामिल हैं—काबुल की ओर भाग गए।...पुलिस और सेना बड़ी सक्रियता से भगोड़ों का पीछा कर रही है...करतारसिंह सराबा और डा० मथुरासिंह की गिरफ्तारी के लिए दो-दो हजार का पुरस्कार रखा गया।...ग़दरियों के चालाक नेता भाई परमानन्द को भी गिरफ्तार कर लिया गया, और उसकी रचित पुस्तक 'हिस्ट्री आफ इंडिया' जब्त कर ली गई...ग़दरियों को पूरी तरह कुचलने के लिए 'इंडिया डेफेंस ऐक्ट' लागू कर दिया गया...ग़दरियों का एक खतरनाक नेता गंगा राम काबुल जाता हुआ पेशावर में पकड़ लिया गया...गंगाराम की लाहौर में गिरफ्तारी, जिसने पुलिस के पास पार्टी के बहुत-से भेद खोल दिए। ...रासबिहारी बोस को पकड़ने के लिए, जिसकी गिरफ्तारी के लिए पहले ही साढ़े सात हजार का इनाम घोषित किया जा चुका है, पंजाब सरकार ने और पाँच हजार का इनाम नियत कर दिया...।"

बड़ी चिन्तित मुद्रा में ये तीनों एक-दूसरे के हाथ से अखबार छीन-छीनकर पढ़ते जा रहे थे और पढ़-पढ़कर सिर धुन रहे थे।

कुछ अन्य खबरें भी थीं—"एक हजार के लगभग ग़दरिये पकड़े

जा चुके हैं…कई अपराधी मुखबिर बन चुके हैं…बागियों को गिरफ्तार करवाने में गांवों के नम्बरदार, जैलदार आदि पुलिस की यथायोग्य सहायता कर रहे हैं।…गदर पार्टी के अस्तित्व को पूरी तरह से नष्ट कर दिया गया…।"

सभी समाचार एक से एक बढ़कर हृदय-विदारक थे। कहीं भी कुछ ऐसा इन्हें दिखाई न दिया जो ज़रा-सा भी आशाजनक हो। दोनों में से किसी को आशा नहीं थी कि केवल एक ही सप्ताह में इस सीमा तक पार्टी पर वज्रपात हो जाएगा।

"लो, एक और मुसीबत।" इतने में टुंडीलाट बोल उठा, "बची-खुची आशा भी जाती रही।"

"क्या है बाबा?" सराभा ने उनसे पूछा, "क्या पढ़ा है? इधर करना तो ज़रा।"

"यह देखो।" कहते हुए टुंडीलाट ने हाथ वाला अखबार उसके आगे फेंक दिया। जिसे जगतसिंह और सराभा ने इकट्ठा पढ़ना शुरू किया। खबर का शीर्षक था—"१६ भगोड़ों की गिरफ्तारी।" जिसके नीचे लिखा था—"काबुल के बादशाह ने १६ बागी अंग्रेज़ी हुकूमत के हवाले कर दिए, जो पंजाब से भागकर काबुल आ पहुंचे थे। इनमें अधिक संख्या सैनिकों की थी। काबुल की हुकूमत ने ऐलान कर दिया है कि आगे के लिए जो भी बागी अफगानिस्तान की सीमा के भीतर दाखिल होगा, उसे तुरन्त पकड़कर अंग्रेज़ी सरकार के हवाले कर दिया जाएगा।"

अखबार पढ़ चुकने के पश्चात् वे तीनों बहुत ही उदास दिखाई दे रहे थे। कितनी ही देर तक वे एक-दूसरे की ओर ताकते रहे। मानो पूछ रहे हों—'अब क्या किया जाए?'

१५

कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी पर अंगीठी में जल रहे ईंधन ने कमरे को गर्म किया हुआ था। भाई पन्नासिंह से बातें करते हुए अधिक रात बीत चुकी थी। [illegible] कि काबल के बजाय इन से

रहेगा। पर रूस जाने के लिए भी तो अफगानिस्तान में से गुजरना पड़ता था। और अफगानिस्तान में कदम रखने का जो नतीजा हो सकता है, इसको वे अखबारों में पढ़ ही चुके थे।

अन्त में भाई धन्नासिंह ने बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण सम्मति दी कि जब तक पकड़ा-पकड़ी का और क्रम नहीं हो जाता, तब तक उन्हें उसीके पास ठहरना चाहिए। बाद में अनुकूल वातावरण देखकर वह उन्हें अफगानिस्तान और वहां से रूस की ओर भेजने का उपाय कर देगा।

भाई धन्नासिंह के प्यार और सहानुभूति-भरे व्यवहार ने उन्हें संतुष्ट किया। इस समय इससे अच्छा और कोई उपाय क्या हो सकता था।

रूस एक स्वतन्त्र देश था, जिस पर अंग्रेजी साम्राज्य का कोई दबाव नहीं था। साथ ही लाला हरदयाल के प्रयत्नों से रूसी लोगों को उन्हीं दिनों भारतीय क्रांतिकारियों में रुचि पैदा हुई थी। अत: रूस जाकर इन्हें हर प्रकार की सुरक्षा और सहायता मिलने की आशा थी।

रूस जाने का सुझाव सबसे अधिक सराभा को पसंद आया जिसका इस बात में पक्का विश्वास था कि कभी न कभी 'दादा' भी वहीं पहुंच जाएंगे। दादा कभी-कभार उससे कहा करते थे कि यदि गदर की योजना सफल न हो सकी तो फिर वे रूस की सहायता से भारत को स्वतन्त्र करवाने का बीड़ा उठाएंगे। उधर लाला हरदयाल अभी भी जर्मन शासन से क्रांति में सहायता प्राप्त करने की चेष्टा में लगे हुए थे। सराभा को विश्वास था कि यदि रूस और जर्मनी दोनों भारतीय क्रांतिकारियों की सहायता के लिए उठ खड़े हों तो चौबीस घंटे के भीतर ही अंग्रेजों को अपना बिस्तर गोल कर भारत से भागने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।

अपने मेहमानों को गुदगुदे बिस्तरों में लिटाकर जब भाई धन्नासिंह अपने शयनकक्ष में चला गया तो बाद में भी देर तक तीनों बातें करते रहे। और इस वार्तालाप की समाप्ति आधी रात से पहले न हो सकी।

बहुत दिनों के पश्चात् आज इन्हें इतनी सुखदायक नींद मिली थी।

बाहर तक नहीं हुई थी पर भी कमरा इतना ठंडा था कि सर्दी छोड़ने की इच्छा नहीं हो रही थी। तीनों चारपाइयाँ आस-पास बिछी थीं — पहले [illegible] की, फिर [illegible] की, और उसके बाद दुर्गादास की।

रात्रि का दौर बहुत [illegible] हुआ। ह्विस्की और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] रहा था। [illegible] किसी [illegible] के बावजूद न तो उसकी आँखें [illegible] थीं न ही [illegible] रहा था। रात-भर न [illegible] वह करवटें बदलते हुए कभी दीवारों की ओर देखता, तो कभी [illegible] [illegible] छत की ओर निहार लेता।

सुबह की [illegible] [illegible] के बाद वह उठकर बैठ गया, और कमरे पर पड़ी हुई घड़ी को [illegible] देखना हुआ [illegible] बाहर [illegible]। चारपाई [illegible] होने के कारण [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] कि साथियों की नींद न टूट जाए।

दो-चार कदमों पर एक छोटी-सी चारपाई थी, जिसपर इन साथियों के कपड़े पड़े थे। [illegible] [illegible] अपना कम्बल उठाया, [illegible] [illegible] और मफलर और फिर दरवाजा खोलकर बाहर आ गया।

आँगन बहुत बड़ा था जिसके पिछले भाग में शहतूत और चनार के बहुत-से वृक्ष थे, और उनका [illegible] [illegible] की [illegible] में [illegible] रहा था। [illegible] के साथ ही एक [illegible] पर [illegible] [illegible] रहा था, जिसके [illegible] [illegible] में [illegible] [illegible] जगह पर ही पड़ रहा था। अब भी तेज हवा का झोंका आता, शहतूतों की सूखी टहनियों में से भीषण-सी आवाज पैदा होती थी।

नीचे उतरने पर थोड़ी देर तक धीमे-धीमे कदमों से इधर-उधर टहलता रहा। वैसे ही टहलते हुए वह चनारों के एक बड़े वृक्ष के पास — जहाँ सूर्य की मद्धिम-सी रोशनी पड़ रही थी — जा रुका। फिर वृक्ष के मोटे तने से सहारा लगाकर बैठ गया। तेज हवा से जब वृक्ष से चनार का कोई फूल टूटकर सामने आ गिरता, तो वह कम्बल में से हाथ निकालकर उसे उठा लेता, और फिर एकटक उसकी ओर ताकता रहता, जैसे वह कोई जीवित वस्तु हो।

बैठे-बैठे न जाने उसे क्या सूझी कि अपना कम्बल तन से उतारकर बेपरवाही से एक ओर फेंक दिया, जो हवा के झोंके से उड़कर

अन्धकार की एक टहनी में जा ठहरा।

कम्बल फेंकने के बाद जब उसके हाथ स्वतन्त्र हुए तो उसने जेब से नोटबुक निकाली और उसमें पेंसिल उठाकर लिखने में मग्न हो गया।

ठंड के मारे उसका शरीर ठिठुर रहा था, हाथ सुन्न हो गये थे, पेंसिल उसकी नोटबुक के पन्नों पर बराबर चलती जा रही थी। बीच में उसने हाथ बढ़ाकर अपना कम्बल टहनी से छुड़ाया, जो 'फर-फर' करता हुआ उसके पास से खिसक जाना चाह रहा था। फिर उसने पैरों के बीच में लिया, जब उसे ख्याल आया कि सबेरे का वह ऊपर से उतर आया था।

आप पता था इसके कुछ अधिक समय तक उसने कागज पेंसिल चलाते गुजार दिया, और फिर उसकी आँखें कागज से हट आकाश पर जा अटकीं, जहाँ दो-एक तारे टिमटिमा रहे थे। नोटबुक को जेब में डालने के बाद वह अपने ठिठुरे हुए हाथों को बगलों में दबा गरमाने लगा।

थोड़ी देर के बाद वह उठ खड़ा हुआ। उसने पैरों के बीच से कम्बल उठाकर तह किया और उसे कंधे पर डालकर सीढ़ियों की ओर बढ़ गया।

उसका ख्याल था कि उसके साथी अभी तक खर्राटे भर रहे होंगे, पर कमरे में पहुँचकर उसने देखा, टुंडीलाट और भगतसिंह एक ही चारपाई पर साथ-साथ बैठे बातें कर रहे थे।

"तू कहाँ गया था रे?" टुंडीलाट ने उसे आते ही पूछा और इससे पहले कि उत्तर में सराभा कुछ कहता, भगतसिंह ने उसके कंधे पर पड़े हुए कम्बल की ओर देखकर मुस्कराकर पूछा, "इसे लांड्री में देने गया था क्या?"

टुंडीलाट को भी सराभा के इस पागलपन का आभास हुआ, जो सर्दी से कांप रहा था, पर कम्बल को ओढ़ने के बजाय जिसने कंधे पर रखा हुआ था।

दोनों का विचार था कि हंसी के उत्तर में सराभा भी अपने स्वभावानुसार नहले पर दहला मारेगा। पर सराभा इस समय बहुत गहरे विषाद की मूर्ति बना हुआ था। हंसी के स्थान पर वह गम्भीरता

में बोला, "यही तो आदमी की दुर्बलता है कि हर समय इसे जान बचाने की ही चिन्ता पड़ी रहती है।"

"भाई सच ही तो कहता है सरभा," टुंडीलाट ने दाद दी, "यात्रा करनी काबुल और रूस की, और डरना सर्दी से ? शायद ठंड सहारने का अभ्यास······।"

"पर मैं पूछता हूं," सराभा ने उसे टोक दिया, "कि काबुल या रूस जाकर हम करेंगे क्या ?"

बात सुनकर दोनों हैरानी और गुस्से से उसकी ओर देखने लगे, मानो सराभा ने उन्हें गाली दे दी हो।

"करेंगे क्या ?" टुंडीलाट ने तमककर कहा, "यह तुम क्या बेतुकी बातें कर रहे हो, करतार ?"

"बेतुकी बातें नहीं बाबा !" सराभा की आवाज़ में मानो सम्पूर्ण की आर्द्रता थी, "ठीक कह रहा हूं मैं।"

"ठीक कह रहे हो तुम ?" जगतसिंह ने और भी अधिक रोष से कहा, "कहीं भाग तो नहीं पीकर आया नीचे से ? साफ-साफ बता इस समय तू होश में बोल रहा है या बेहोशी में ? आखिर तू चाहता क्या है ?"

"मैं ?" सराभा ने चारपाई पर बैठते हुए बाकी रहती हुई बात भी कह दी, "मैं चाहता हूं कि दिन चढ़ते ही हम वापस पंजाब की ओर चल दें।"

"बस ?" टुंडीलाट ने थप्पड़ मारने जैसे स्वर में कहा, "तुम तो बेटा, बड़ी-बड़ी डींगें मारा करते थे।"

"गुस्से में न आओ बाबा।" सराभा ने कोमल स्वर में कहा, "इतना कायर न समझो मुझे।"

"ज़रा रोशनी आने दो," सराभा ने जगतसिंह से कहा, उसका शरीर लालटेन के प्रकाश में रुकावट डाल रहा था। जगतसिंह सरकता हुआ बाईं ओर को हो गया।

और फिर अपने लिखे हुए को जब सराभा ने पढ़कर नहीं, पीड़ित स्वर में गाकर सुनाना आरंभ किया, तो दोनों उसपर झुकते चले आ रहे थे। सराभा गाए जा रहा था :

"सूरमे दा कम नहीं ।

हदी मारें दार भजो नूं छोड़ना।
जिथा जिथा शहीदां दा नाम चमके।
कदी फिर देश दे वी भाग्य चमकें।
जिन्हां नाल हमें भी भीड़ा चलदा।
आज़ादी ने लायदा नूं जेही लड़दा।
कई वारा उन्हां नूं लड़ीए चमकें।
कदी फिर देश दे वी भाग्य चमकें।
हुण दा पंजाबियां की तेरी शान नूं।
ऊँचिया शहीदियां दी शान लाज नूं।
भज लाओ कला आज मुड़ चमकें।
कदी फिर देश दे वी भाग्य चमकें।
उठ नी पंजाब नूं गुजार जीहए।
भाइड़ जिसदी होवा जैसा हो जिए।
मौत नाल फेरे लइये भाई चमकें।
कदी फिर देश दे वी भाग्य चमकें।"

(अपने साथियों से विमुख होना वीरों का काम नहीं है। जब मुसीबत आ पड़ी है तो प्राण से क्या लोभ ? जिन लोगों के साथ मिलकर हमने देश आज़ाद कराने का बीड़ा उठाया था वे सब जेलों में सड़ रहे हैं, और हम लोगों की तरह मुंह छिपाकर चले आए। तो चलो, चलकर हम जेलें तोड़ डालें और अपने साथियों को आज़ाद करें। हमें दूल्हा बनकर मृत्यु से भांवर लेने हैं।)

लगता था, कविता ने दोनों श्रोताओं पर गहरा प्रभाव डाला था जिसका प्रमाण है वहीं थी उनकी स्थिरता, जो कविता के समाप्त होने पर भी कायम रही।

"क्या ख्याल है बाबा ?" टुंडीलाट को टुकर-टुकर अपनी ओर ताकते पाकर सराभा ने उससे पूछा, "कुछ अच्छी लगी यह तुकबन्दी ?"

उत्तर में टुंडीलाट कुछ नहीं बोला। फिर उसने जगतसिंह से प्रश्न किया, "और तुम बताओ भाई।"

"बड़ी कमाल की कविता है।" जगतसिंह प्रशंसापूर्ण ढंग से इतना ही कहकर चुप हो गया।

"माफ करना भाई !" सराभा की आवाज़ में असंतोष था, "मैंने

किसी कवि-सम्मेलन के बोलने के लिए नहीं लिखी है यह मुक्तकी, जो सिर्फ वाह-वाही से ही मेरा पेट भर सकता।

"और फिर किसलिए लिखी है?" भगतसिंह की तरफ पर दुर्गा-भाट व्यंग्य-भरे स्वर में बोला, "इनके दिल बहलाने के लिए!"

सरला को यह बात भी अच्छी नहीं लगी। वह तमक उठा, "बाबा, तुम यह कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो!"

"मैं बहकी बातें नहीं करता भगतसिंह।" दुर्गाभाट ने पूरे जोश से कहा, "शायद मेरे ही दिमाग में कुछ फितूर-सा आ गया लगता है। लोक-कुशल की हालत न होते हुए तू कैसे लिख सकता था कि मानो कि इस कुण्ड के तट के पास बाढ़ है—इस किसी की तरह घुट घुटकर जाते हैं। यदि इनको ही बात प्यारी होती इन्हें, तो इसलिए ही क्यों न पागल से बैठे रहते।"

"बाबा!" वह बिना सोचे-समझे आवेश में आकर बोला, "तुमने मेरी कविता का मतलब ही नहीं समझा बाबा। नहीं तो……"

"तू रे नादान!" दुर्गाभाट ने बूढ़े की तरह पूछा, "तुम्हारा मतलब मैं नहीं समझा, या तू मेरी नहीं समझा। यह समय इस तरह में पड़ने का नहीं है। माना कि तुम पढ़े-लिखे हो और राजनीति की बारीकियों को मुझसे बढ़कर समझते हो, पर तुममें बहुत बड़ी बुराई यह है कि एक बार जो बात तुम्हारे मन में जमा जाए, तुम उसे ब्रह्म-वाक्य समझने लगते हो। बताओ तो, बोल-बोल तुम्हें घबराहट हुई है बनाव बातें करने के लिए?"

"गुस्से में न आओ बाबा!" सरला ने नम्र स्वर में कहा, "पहले मेरी बात सुन लो शान्ति से, उसके बाद तुम जो कहोगे मैं वही मान लूँगा।"

भगतसिंह जिज्ञासापूर्ण मुद्रा में दोनों की नोक-झोंक सुन रहा था।

"अच्छा!" दुर्गाभाट ने गुस्से को दबाते हुए कहा, "कह, क्या तुझे कहना है। पर ज्यादा फिलासफी मत छांटना।"

"बाबा!" वह मानो वाद-विवाद के लिए कील-काँटे से लैस होकर बोला, "कविता की ये पंक्तियाँ मैंने किसी कवि-सम्मेलन में बोलने को नहीं लिखी हैं। बल्कि काफी सोच-विचार के बाद मैंने किसी

धीरे से पर पहुंचकर गिरती है। फिर भी हूं तो मनुष्य ही। मैं इ करता हूं कि इनमें न बाकी मानने वाली परिस्थिति की निष्फल वही जिन्दों की तरह मुंह छुपाकर, या मृत्यु से डरकर बाकी। तो इस देशपुरी के लिए माफी मांगता हूं, और इस से प्रार्थना करता हूं कि इसे वैज्ञानिक पहलू से सोचें। महाराज 'आदमी गिर-गिरकर सवार बनता है।' देशभक्तों को भी मंजिल पर पहुंचने के लिए कई बार गिरना और कई बार उठना है। क्यों भाई?" उसने भगतसिंह को सम्बोधित करके कहा, "तुम हो। मेरी बातें?"

"हां, हां।" कुछ तेज ढंग से भगतसिंह ने उत्तर दिया, "करते तुम अपनी ज्ञानचर्चा।"

सराभा ने इस व्यंग्य का बुरा नहीं माना, वैसे ही बोलता "इसे मानने से हम इन्कार नहीं कर सकते कि हमारा प्रोग्राम फेल गया है, विशेष रूप से यह १६ फरवरी वाला तो बहुत ही बुरी तरह कुचला गया……।"

"अरे यह तो हम सब जानते हैं।" हरनामसिंह टुंडीलाट ने धैर्य खोकर "इसमें तूने नई कौन-सी बात कही है। बात मतलब की कर।"

"मतलब की बात बस इतनी ही समझ लो चाचा," वह बोला, इस समय तक एक हजार के लगभग हमारे साथी पकड़े जा चुके और बाकी जो अभी तक बाहर हैं, उन्हें भी जल्दी ही ये हरामी पकड़वा देंगे, मेरा मतलब अंग्रेजों के देसी कुत्तों से है।"

"ठीक है तुम्हारा ख्याल।" भगतसिंह बोला, "पर यह कोई बात है? हममें से कौन नहीं जानता कि अंग्रेजों के टुकड़खोर हरामखुदगी न करते तो कोई हमारा बाल टेढ़ा न करता। पर इसका इलाज ही हमारे पास कौन-सा है?"

"इलाज कहीं फतवे के रूप में आसमान से तो नहीं आएगा भाई।" सराभा बराबर बोलता चला जा रहा था, "इसमें कोई शक नहीं कि परिस्थितियों की पेचीदगी ने हमारे चारों ओर अंधेरा फैला रखा है। किसी ओर से भी इस समय हमें रोशनी की कोई किरण दिखाई नहीं दे रही। पर इसका मतलब यह तो नहीं कि हम यहां पर आ धन्नासिंह के घर में महीनों डेरा जमाए बैठे रहें, कि कब स्थिति ठीक हो

[illegible] जब तुम यहाँ हो [illegible]। और फिर [illegible] में तुम्हारा [illegible] रूप हुआ [illegible] भी स्थिर न रहा — मेरा अपना [illegible] —तो एक बात तो मैं कह सकती हूँ कि [illegible] तुम बच सकते हो। और यदि [illegible] तब तो यहाँ आकर क्या करोगे? [illegible] मैं [illegible] हूँ [illegible] कि यह तुमने [illegible] को छोड़कर [illegible] के लिए [illegible] किया क्या यह ठीक था?"

"तुम बड़े विचित्र व्यक्ति हो," दुर्गादास [illegible] बोला, "कोई [illegible] की बात ही तो समझी नहीं [illegible] और [illegible] भी [illegible] कि [illegible] में तुम्हारे [illegible] नहीं [illegible] है। [illegible] कि [illegible] और [illegible] भी क्या [illegible] है? और यदि यहाँ तक [illegible] तुम [illegible] हो [illegible] पूछता हूँ कि [illegible] उलझने के लिए?"

[illegible] बोला, "मैं चाहता हूँ कि [illegible] तुम [illegible] लिखी हुई [illegible] को [illegible] के बाद कुछ करें। [illegible] दोनों [illegible] की [illegible] का [illegible] रहे [illegible], पर मेरा विश्वास [illegible] नहीं कि [illegible] से [illegible] जाए। यह मैं [illegible] हूँ कि [illegible] से [illegible] हुए [illegible] की [illegible] को [illegible] और [illegible] का [illegible] है, पर फिर क्या हुआ। [illegible] दुर्गादास का [illegible] में आ जाते [illegible] दुनिया की [illegible] नहीं हो सकती—न ही कोई [illegible] हो सकती। मैं कहता हूँ कि [illegible] कर [illegible], पर उनका विश्वास नहीं करना चाहिए, [illegible] उद्देश्य से दूर नहीं होनी चाहिए। [illegible] कि [illegible] हम [illegible] पर [illegible] हैं। फिर यदि [illegible] ही है तो हम [illegible] तरह क्यों करें—मेरी [illegible] क्यों न करें, सफलता चाहे मिले या न मिले।"

बोलता-बोलता [illegible] इतने [illegible] से भर गया कि उसके चेहरे पर लाली [illegible] लगी। उत्तर में दुर्गादास ने कुछ कहने के लिए होंठ हिलाए ही थे कि उसे रोकते हुए बीच ही [illegible] कहता गया, "[illegible]

क्रान्तिकारियों की भाषा में पिस्तौल का अर्थ था 'छोटे हथि-
यारों' को 'बाजे' कहा जाता था। इसी तरह बन्दूकों को
पिस्तौलों को 'कबूतर' और कारतूसों को 'अंडे' कहा जाता था।

"अब समझ में आ गया।" टुंडीलाट बोल उठा, "तुम्हीं उसी की बात करते हो न, जो डाक्टर मथुरासिंह ने तैयार किए थे, स्वयं फैक्टरी में बनाए थे ?"

"हां बाबा," सराभा ने पुष्टि की, "माल काफ़ी इकट्ठा किया था, पर उससे काम चल सकता है। लेकिन दिक्कत तो इस बात की है कि डॉ० मथुरासिंह ने पता नहीं कहां पर वह स्टाक रखा है और न ही हमें इस समय डॉ० मथुरासिंह के बारे में कुछ पता है कि वह किस ओर चला गया। पर फिलहाल हमारी तसल्ली के लिए इतना ही काफी है।"

उत्साहित होकर टुंडीलाट बोला, "फिर तो भाई, लड़ने का मज़ा आ जाएगा और मरने का भी। मुझे यही डर था कि शायद कोरी बातें ही न कर रहा हो।"

सराभा ने बताया, "यदि ज्यादा आवश्यकता पड़ी तो बंगाल भी कुछ स्थान हैं बाबा, जहां से जरा महंगे दामों में मंगवाए सकते हैं।"

टुंडीलाट की तरह जगतसिंह ने भी उत्साह प्रकट किया, "फिर हमें क्या परवाह है। साथ ही जितना हो सकेगा, शायद मैं भी कुछ कुछ इस काम में तुम्हारी सहायता करूं।"

"तुम भी ?" सराभा ने और भी उत्साहित होकर पूछा, "तुम भी क्या कहीं पर कुछ रखकर आए हो ?"

"रखकर तो कुछ नहीं आया, पर मुझे एक मित्र की सहायता से कुछ मिल जाने की उम्मीद है।"

सराभा से भी अधिक प्रसन्न हो टुंडीलाट जगतसिंह से कहने लगा, "मैंने तो समझा था कि तुम सिर्फ़ गधे लादने ही जानते हो, पर तुम तो······।"

जगतसिंह ने हंसी का उत्तर हंसी में देते हुए कहा, "गधे लादने के अलावा घोड़े दौड़ाना भी जानता हूं।"

"पता है हम सबको।" सराभा बोला, "तेईसवें रिसाले में नौकरी

चर चुके हो, तो वहीं पर कोई ठौर बनाया होगा। क्यों ?"

"तुम्हारा ख़याल ठीक है करतार।" जगतसिंह विस्तार से बताने लगा, "वहां के रिसालदार के सरदणी से मित्रता हो गई थी। सरदारनियों के हाथ में बहुत कुछ होता है। उससे वायदा किया हुआ है कि जब भी आवश्यकता पड़ेगी वह रिसालदारी नस्ल की बहुत-सी मुर्गियां और दे सकेगा।"

"यह तो बड़े सौभाग्य की बात है।" सराभा ने संदेह प्रकट किया, "पर वर्तमान परिस्थिति में मियांमीर की छावनी में हमारा प्रवेश करना कौन-सा आसान काम है भाई।"

"मियांमीर जाने की आवश्यकता ही न पड़ेगी करतार।"

"तो फिर कहां ?"

"हमें सरगोधा जाना होगा—चक नम्बर पांच में, जहां ढेरिंग रसाले का घास-फार्म है। वहीं मेरा वह मित्र रहता है, सूरतसिंह रिसालदार।"

डुडीलाट बोला, "कुछ न कुछ तो काम बन ही जाएगा इससे। आगे जो होगा देखा जाएगा।"

"किसी को कुछ पता है क्या ? जगतसिंह ने सराभा से पूछा, "कि डॉ० मथुरासिंह इस समय कहां होगा ?"

"अगर पता होता तो अफसोस ही किस बात का था। अखबार में ही तो पढ़ा था कि वह रूस चला गया है।" सराभा ने कहा।

"शायद अभी तक वह पकड़ा नहीं गया होगा।" डुडीलाट ने अनुमान लगाया।

"बेशक," सराभा ने उत्तर दिया, "नहीं तो अखबारों में छप गया होता उसकी गिरफ्तारी के बारे में। गुमनाम आदमी तो है नहीं। फिर जबकि पुलिस ने पुरस्कार भी घोषित किया हुआ है उसकी गिरफ्तारी के लिए।"

"खैर," डुडीलाट ने निर्णय के ढंग में कहा, "वहां जाकर उसका पता लगाने की कोशिश करेंगे। फिलहाल हमें करतारसिंह के प्रस्ताव पर ही अमल करना चाहिए, और जल्दी से जल्दी। हमारे लौटने तक मेरा विचार है कि पकड़ा-धकड़ी का हंगामा कुछ कम हो गया होगा। तो तुम्हारा विचार है करतार, कि पहले … ?

"अच्छा छोड़ो इन बातों को।" बीरी ने चायदानी में से
केतली और चीनी अलग किस्म करते हुए, दोनों को इकट्ठा
किया, "आप तो बस बस कहे जाओ, पर बातचीत की
शुरुआत भी नहीं हुई।" फिर उसने सरामा की ओर देख, "
कहते थे कि आपके पास बस समय है और बात बहुत-सी करने
चाहते हैं, फिर देर क्यों कर रहे हैं ?"

"रघुबीर," उसने गला साफ करते हुए कहा, "तुमने जि
पूछा था, उसका बहुत-सा भाग तो बिना पूछे ही बता चुका
फिर भी अभी बहुत कुछ है पूछने के लिए।"

बीरी ने चूल्हे में जल रही लकड़ी को ठीक करते हुए
"पूछिए फिर।"

"हाथी के पैर में सभी का पैर आ जाता है रघुबीर। सबसे
बात तुमसे पूछनेवाली यही है कि अपनी जिन्दगी से तुम्हें कि
मोह है ?"

"बस !" बीरी ने चूल्हे में दो-तीन फूंक मारने के पश्चात्
"इतनी-सी बस बात को जिसका बखान कर दिया ?"

"यह इतनी छोटी बात नहीं बीरी !" सरामा के स्वर
गुरु-गंभीर-बोला, "यह बहुत बड़ी बात है, जो इस समय सरामाजी
पूछ रहे हैं।"

"पर सरामाजी मुझसे ही क्यों पूछ रहे हैं भैया ?" बीरी ने हँ
सा प्रश्न किया, 'अपने-आपसे ही क्यों नहीं इस प्रश्न का उत्तर
लेते ? यदि यह अपनी जिन्दगी का मोह छोड़ सकने की शक्ति रख
हैं तो क्या इन्हें इतना अभिमान हो गया है कि दूसरा कोई नहीं
सकता ?"

"तुम तो बीरी," बड़े भाई ने छोटी बहिन को समझाते हुए कहा
"लड़ाई पर उतारू हो गई हो ? जरा शान्ति से बात करो।"

"मेरा यह मतलब नहीं था, रघुबीर !" सरामा ने कोमल होकर
कहा, "तेरे जैसी लड़की को कौन उपदेश देगा। फिर मैं तो कोई
बुजुर्ग भी नहीं, तुम्हारी ही उम्र का या दो-तीन साल तुमसे बड़ा
होऊंगा। जिन्दगी के मोह से मेरा कुछ और ही मतलब है।"

"अच्छा। आप अपना वह मतलब भी बता दें।" बीरी ने हँसते

ा कहा।

सराभा ज़रा संभलकर बैठ गया। शायद इसलिए कि इस लड़की बात करना उसने जितना आसान काम समझा था, अब उसे वह तना आसान नहीं लगा।

"इसमें कोई सन्देह नहीं रघुबीर," वह खूब सम्भलकर बोला, कि अपनी उम्र की लड़कियों से तुम बहुत ज्यादा सयानी हो, और ाथ ही तुम्हारे बारे में जितना कुछ मैं मास्टर दलीपसिंह से सुन चुका ', उसके अनुसार यह भी मानना पड़ेगा कि बड़ी से बड़ी परीक्षा में ाडकर भी तुम सफल हो सकोगी। पर हर एक कला की एक अपनी ऱ्कनिक होती है। क्रांतिकारी बनने के लिए भी कुछ टैकनिकल नियम सीखने आवश्यक होते हैं। सो यह जो 'जिन्दगी के मोह' वाली बात मैंने तुम्हें पूछी है, यह भी उसी टैकनिक का एक भाग है। इस मामले में शायद तुम मुझसे भी ज्यादा दृढ़ होगी, पर बड़ा प्रश्न तो यह है कि तुम्हारी दृढ़ता क्या हमेशा स्थिर रहेगी?"

"क्या मतलब?" वीरो ने जिज्ञासा के ढंग से पूछा, "ज़रा मुझे स्पष्ट करके बताइए।"

"बुरा न मानो।" वह बोला, "मैं कोई गुप्त बात नहीं कह रहा, बल्कि तुम्हारे भाई की उपस्थिति में कह रहा हूं कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।"

"मैं कहती हूं," वीरो ने रोब और कुछ रोष के रंग में कहा, "मुझे पहेलियां समझ में नहीं आतीं। हम गांव के लोग तो खरी-सीधी बात करना जानते हैं। हां, आपका क्या मतलब है—इस 'तलवार' और 'म्यान' वाली पहेली से?"

"वीरो!" सुदर्शन ने उससे गुस्से से कहा, "तुम्हें ज़रा सभ्यता से बात करनी चाहिए। गांववासी होने का यह अर्थ नहीं कि जो मुंह में आए, बकते जाओ। तुम्हें पता होना चाहिए कि इस समय तुम किससे बात कर रही हो!"

"कोई बात नहीं मित्र!" सराभा ने उससे कहा, "मैं कोई बुरा तो नहीं मान रहा हूं इसकी बातों का। बल्कि लुत्फ आ रहा है इसकी स्पष्टवादिता सुनकर।" और फिर उसने वीरो से कहना शुरू किया, "पहेली ही सही, पर इसे समझना कठिन नहीं है। मेरा मतलब यह है

शर्त मंजूर है कि तुम अपने घर पर रहकर ही फिलहाल काम जैसे कि मास्टर दलीपसिंह कह रहा है। क्या यह मंजूर है तुम्हें

"आपका मतलब है पार्टी की सदस्या बनकर?"

"नहीं, फिलहाल सहायक के रूप में।"

"स्वीकृत-अस्वीकृत का तो प्रश्न ही नहीं, बल्कि यह त बहुत समय से इच्छा है सराभा जी, जिसे आप पूरा करेंगे।"

"तो वह दूसरी बात भी सुन लो।"

"सुनाइए।"

"मेरा मतलव विवाह-शादी के मामले से है रघुवीर। मान साल-छः महीने तक तुम्हारी शादी हो जाती है। मैं पूछता हूं, हालत में तुम कौन-सा कदम उठाओगी। बस इसी का उत्तर तुमसे चाहता है।"

दूध वाला लोटा आलमारी में से उठाकर चूल्हे पर रखते बीरी हंस पड़ी, "बस, इतनी सी बात के लिए ही इधर-उधर की। रहे थे?"

"फिर वही बदतमीजी।" सुदर्शन ने फिर उसे डांटा, "मैं कहता अदब-तहजीब से बात कर बीरी!"

"कोई चिन्ता न करो दोस्त," सराभा ने उसे टोक दिया, "तु भाई होकर भी शायद इस लड़की की कीमत समझ नहीं सके, जितना एक बेगाना होते हुए समझ रहा हूं। सो जैसे भी इसका दिल च बोलने दो। इससे मेरी इज्जत में कोई फर्क नहीं पड़ता, न ही इसकी तहजीब में।"

"आप तो सराभा जी!" सुदर्शन हंस पड़ा, "उल्टा इसे चढ़ा रहे हैं, एक करेला, दूसरा नीम चढ़ा।" और फिर उसने बहन से कहना शुरू किया, "इनकी बातें तुम्हें ऐसी-वैसी लगती हैं पर……"

"ठहरिए भैया," मानो बीरी पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा हो, "मुझे पहले एक बात इनसे पूछ लेने दो।" और उसने सराभा को सम्बोधित किया, "आपको एक पुरानी घटना याद कराऊं, सराभा जी। याद है वह पुरानी बात?"

"कौन-सी?"

"वही जो अमरीका रहते हुए लाला हरिदयाल से आपने की

हो।"

"याद नहीं आ रहा, रघुवीर, कि तुम कौन-सी बात का ज़िक्र कर रही हो।"

"गुज़रे इतवार को मैंने आपकी उस मुलाकात का बयान पढ़ा था, जब लामा जी ने एक बार आपसे कुछ इसी प्रकार के प्रश्न किए थे, जैसे कि आज आप मुझसे कर रहे हैं।"

"ओ, याद आ गया। तुम्हारा मतलब उस मुलाकात से है न, जब पार्टी में शामिल होने की इच्छा लेकर मैं पहली बार लामा जी के पास गया था?"

"जी, उसी मुलाकात का ज़िक्र कर रही हूं। क्या आप बता सकते हैं कि उस समय उन्होंने कौन-सी बात विशेष रूप से पूछी थी आपसे?"

"शायद यही विवाह-शादी के विषय में।"

"और आपने शायद उत्तर दिया था कि मेरी मंगनी हो चुकी है और विवाह भी जल्द होने वाला है?"

"बेशक, मैंने यही उत्तर दिया था।"

"तो फिर मेरा भी यही उत्तर समझिए। आपकी मंगनी यदि 'यमराज' की लड़की से हो चुकी है—जैसे आपने उस समय लामाजी को कहा था—तो मेरी यमराज के प्रतिनिधि के साथ।"

सराभा के चेहरे पर एक मीठी सी चमक पैदा हुई। वह बोला, "मेरी मंगेतर का नाम तो 'मौत' है, और तुम्हारे मंगेतर का नाम?"

"मेरे मंगेतर का नाम 'यमदूत'।"

"तो फिर बस मेरे पास कुछ और पूछने के लिए बाकी नहीं है, रघुवीर। मैंने ले ली तुम्हारी परीक्षा।"

परीक्षा का काम समाप्त हो गया और इसके बाद सराभा ने बात बीरो के आगे प्रकट कर दी, "जिसके लिए उसे बुलाया गया था।"

"ननिहाल जाओगी रघुवीर?" अन्त में उसने बीरो से पूछा।

"जाऊंगी।" उसे उत्तर मिला।

"कब?"

"कोशिश तो जल्दी ही करूंगी।"

"उस लड़की को—डाक्टर मथुरासिंह की लड़की को—जानती हो, जिसे डाक्टर के भंडार का पता है?"

सुदर्शन बराबर प्रसंगानुरूप हामी की आवाज करता था। पर बीरो वैसे ही गुम-सुम बनी रही।

बाबाजी पूरे उत्साह और जोश से बता रहे थे, "इन चिट्ठी की कीमत का अभी तुम्हें पता नहीं, जो कुछ सरकार से मिली है।"

"बताइए पिता जी।" सुदर्शन ने उत्सुकता दिखाते हुए कहा।

"ध्यान से सुनो।" वे बोले, "सच पूछो तो तुम्हारा घर बनाने के लिए ही मैं ये सब पापड़ बेल रहा हूं। इसकी बदौलत तुम्हें तभी पता लगेगा जब तुम बहुत बड़ी जागीर के मालिक बनोगे—सम्मान और पदों के तौर पर अधिकारवर्ग के दिवानों को तुम्हारी आधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी।"

"किस तरह बापूजी?" सुदर्शन ने मुंह ऊपर करके पूछा।

"इस तरह," खुशी से मस्त बने बाबाजी बता रहे थे, "कुछ और महीनों तक हिज आनर पंजाब में एक दरबार करने वाले हैं, जिस बारे में उन्होंने खुद उल्लेख किया था। उस दरबार में केवल वे आदमी बुलाए जाएंगे जिन्होंने भर्ती के काम में बढ़-चढ़कर सरकार की सहायता की होगी।"

"किसलिए बुलाए जाएंगे पिताजी?" सुदर्शन ने चोर आंख से बीरो की ओर ताकते हुए उनसे पूछा। बीरो इस समय जल्दी-जल्दी अपने हाथों की उंगलियों को मरोड़ रही थी।

"इनाम बांटने के लिए बेटा।" उन्होंने बताया, "जहां तक मेरी जानकारी की बात है, लायलपुर की बार में, साथ ही जेहलम नदी के तटों पर लगभग सात हजार एकड़ जमीन की मुरब्बेबन्दी की जा रही है। और यह जमीन उस दरबार में हिज आनर इनाम के रूप में बांटेंगे। मेरी इच्छा है यदि हमें कहीं अपने ही जिले में जमीन मिल जाए, तो बस चांदी हो जाए। अपनी ओर से तो यही कोशिश कर रहा हूं कि घर में ही नौ निधियां आ जाएं। जिले के डिप्टी कमिश्नर ने पूरी उम्मीद दिलवाई थी। आगे जो परमात्मा को मंजूर हो।"

कागजात को ठीक ढंग से समेटने के बाद वे बोले, "ठहरो, पहले मैं इन्हें सम्हाल आऊं।" और उठकर वे सन्दूक की ओर चले।

"हां मैं कह रहा था," वापस आकर अपनी टूटी हुई वाक्य-

मूँछ छल्ला को फिर से मोड़ते हुए उन्होंने सुदर्शन को बताना शुरू किया, "पर केवल उम्मीद पर ही तो भरोसा करके नहीं बैठना चाहिए बेटा। इन अफसरों का काफी के पानी का सा हिसाब होता है। जिस ओर को मुड़ गए, मुड़ गए। यही तो समय है जब भाग-दौड़ करके कुछ बना लिया जा सकता है। इसलिए मेरी इच्छा है कि जब भी मौका मिले जेहलम जाकर एक बार फिर डी० सी० को मिल आऊंगा।"

"जेहलम के डी० सी० को किसलिए पिताजी?" सुदर्शन ने पूछा।

वे बोले, "इस समय सब कुछ डिप्टी कमिश्नरों के हाथ में है। गवर्नर की ओर से सबको हुक्म मिल चुका है कि अपने-अपने जिले से उन आदमियों की सेवाओं की सूची बनाकर भेजें जिन्होंने भर्ती करवाई है। साथ ही विधिवत् ढंग से जांच करके तैयार करें कि कितनी-कितनी भर्ती अब तक किस-किसने करवाई है। वैसे तो मेरे काम से डी० सी० पहले ही खुश है, और जितनी भर्ती मैं करवा चुका हूं उससे भी वे अनजान नहीं हैं, फिर भी मिलकर सब कुछ समझा देने की बात और ही होती है।"

"ठीक है पिताजी," सुदर्शन बोला, "फिर तो आपका डी० सी० से मिलना बहुत जरूरी है।"

"पर मैं सोचता हूं," वे बोले, "अच्छा हो कि मिलने से पहले और दस-बीस रंगरूट भर्ती करवा दूं। टिवाणों के मुकाबले में चाहे मेरा काम कहीं के बराबर है, पर अपनी ओर से कोशिश तो यही होनी चाहिए कि अधिक से अधिक काम करके दिखाया जाए। इसलिए मेरी राय है कि अमृतसर से वापस आकर दो-तीन दौरे करूं और उसके बाद ही डी० सी० से मिलूं।"

"अमृतसर आप किसलिए जाएंगे पिताजी?" सुदर्शन ने जिज्ञासा-

कुछ बोले वैसे ही अंगुलियां मरोड़ते जा रहे

से अमृतसर जाना पड़ रहा है बेटा।" वे

रहते होंगे एक खतरनाक किस्म के

?" सुदर्शन ने आश्चर्य प्रकट करते हुए

कहा, "मुझे तो आजकल लड़ाई के ही दिन गुज़ारने को हुए! मिलती, समझदार कब हूँ ?"

"अरे भाई," पुत्र की आशंका दूर करते हुए वे बोले, "कनैडा, अमेरिका आदि देशों में जो पंजाबी रहते थे, पता नहीं उनके दिमाग़ पर क्या फ़ितूर पैदा हो गया है जो वे उठ खड़े हुए हैं अंग्रेज़ी सिंहासन उलटाने। क्या हिन्दू, क्या हिन्दू का जोरदार। बजाय इसके लड़ाई के मौके पर अपनी सरकार की सहायता करने, उन दुष्टों लोगों ने पंजाब में आकर बगावत शुरू कर दी।"

"अच्छा पिताजी!" सुदर्शन ने और भी आश्चर्य प्रकट किया, "हमने तो इसके विषय में आज तक कभी कुछ नहीं सुना।"

"कोई आज की बात है बेटा?" बाबाजी विस्तारपूर्वक बताने लगे, "जब से युद्ध शुरू हुआ है, तभी से ये लोग भीतर ही भीतर सर्द बग़ावत की खिचड़ी पकाने में लगे हुए हैं। वैसे इस समय उनकी कमर खत्म हो चुकी है—सरकार सबको पकड़कर अन्दर करती जा रही है।

"पर एक राजभक्त जाति के नाते सिखों का भी तो कर्तव्य है कि सरकार के लिए अपनी वफ़ादारी और नमकहलाली का बढ़-चढ़कर प्रमाण दें। तूने पूछा है कि किसलिए मुझे अमृतसर जाना है। बात यह है बेटा, कि अमृतसर में इसी सप्ताह सिख पंथ के नेताओं की एक बड़ी सभा होने वाली है, और होगी भी श्री अकाल तख्त पर, जिसमें बाग़ियों के विरुद्ध पूरी सिख कौम की ओर से एक गुरमता पास किया जाएगा। यह तो तुझे पता ही है कि सिख कौम ने युद्ध में अपनी वफ़ादारी का प्रमाण हर पहलू से बढ़-चढ़कर दिया है। सिख कौम को इस बात का अभिमान है कि जब भी अंग्रेज़ी सिंहासन पर कोई मुश्किल आ पड़ी, इसने पूरी सहायता की। १८५७ के ग़दर में भी तो सिखों ने कोई कम बहादुरी का परिचय नहीं दिया था, जिसके सिलसिले में हमारी कदरदान सरकार ने सिखों को अपनी कृपा से मालामाल कर दिया। फुलकिया रियासतें उनकी ही कृपा का फल हैं। उसी तरह अब भी जिन लोगों ने दोनों पक्षों में, युद्ध जीतने और बाग़ियों को कुचलने में, सरकार की बढ़-चढ़कर सहायता की, निश्चित रूप से उनकी सात पुश्तों तक किसी को कमाने की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

"आपने तो पिताजी, बड़े काम की बातें बताई हैं।" सुदर्शन ने भरपूर

बाबाजी ने बड़ी हसरत के स्वर में कहा, "कितना अच्छा होता, यदि किस्मत का एक दांव और लग जाता। फिर तो हमारे सौभाग्य के एक नहीं, दो नहीं, चारों दरवाजे खुल जाते।"

"वह कैसे पिताजी?"

वे बोले, "वह तो स्पष्ट फरारी करवाने या बागियों के लिए पता इकट्ठा करने का काम है। माना कि सरकार की नजरों में इसका बड़ा मूल्य है। पर इसमें मुश्किलों का भी तो सामना करना पड़ता है। दिन-रात भागते फिरो, टके-टके के आदमियों की खुशामदें करते फिरो, कई तरह के लालच दो; यहां तक कि बहुत-सा रुपया अपने पल्ले से खर्च करो। फिर कहीं जाकर छोटी-मोटी सफलता प्राप्त होती है। तुम्हें मालूम है, इसीपर तो अभी कुछ लगा चुका हूं। मेरा मतलब है यदि कहीं भाग्य सहायता करे तो हम भी एकाध बागी को गिरफ्तार करवा देते, फिर तो नौ निधियां और अठारह सिद्धियां प्राप्त हो जातीं। तुम्हें शायद पता नहीं होगा, हाल में ही सरगोधे के किसी सिख सरदार ने इकट्ठे तीन बागियों को रात ही रात में गिरफ्तार करवा दिया। मैं सोचता हूं, कैसे आदमी का भाग्य जाग उठता है! इधर गिरफ्तारी व्यवहार में आई और उधर उस सरदार के लिए झटपट बहुत-सी भूमि और कई हजार नकदी इनाम की घोषणा भी गई। सच कहते हैं कि भगवान जब देने लगता है तो छप्पर फाड़कर देता है। कितना अच्छा होता यदि हम भी इस ओर कुछ हाथ-पांव चला सकते!"

सुदर्शन बोला, "यह कौन-सा कठिन काम है पिताजी। मुझे एक बार लाहौर जा लेने दीजिए। एक की क्या बात है, आधा दर्जन बागी गिरफ्तार न करवा दूं तो मेरा नाम बदल दीजिएगा।"

"जीते रहो बेटा।" बाबाजी ने स्नेह और उत्साहपूर्ण हाथ उसकी पीठ पर फेरते हुए कहा, "फिर तो हमारी सात पुश्तें तर जाएंगी!"

"पर तुम्हारा लाहौर जाना कैसे सम्भव हो सकता है बेटा, जब तक तुम्हारी परीक्षा नहीं हो जाती?"

"यह तो आसान काम है पिताजी।" वह बोला, "यदि आपकी मर्जी हो तो मैं परीक्षा का सेंटर एक ही दिन में सरगोधे के बजाय लाहौर करवा दूं।"

"अगर वह हो जाए फिर तो भाग्य ही जाग उठे।"

"तो बस हुआ ही समझो। आज ही सरगोधे बता आए! एडमिनिस्ट्रेटर अपनी पहचान वाला है। वह मेरी बात नहीं टाल सकता।"

सुदर्शन ने तो सेंटर बदलवाने की वैसे ही डींग मारी थी। उसने यह परीक्षा देने का इरादा ही छोड़ चुका था जिस समय से उसे सरगोधा का आदेश मिला। सेंटर इतनी जल्दी बदलवाना संभव नहीं था। पर उसे तो बाबाजी को चकमा देना था। बाबाजी क्या जानें, सेंटर बदलवाने के क्या नियम होते हैं।

२१

बाबाजी जब वापस आए, तो बड़े खुश और उत्साह से परिपूर्ण थे। सदा की भांति अपनी यात्रा का वर्णन उन्होंने वीरो को पूरे विस्तार से सुनाया। सुदर्शन को लाहौर के रिश्तेदारों के पास छोड़ने के विषय में उन्होंने बताया कि वहां लड़का बड़े आराम से है। उसे एक अलग और एकान्त कमरा मिल गया है इत्यादि। साथ ही उन्होंने बताया कि सुदर्शन की राय है कि परीक्षा दे चुकने के बाद भी वह कुछ देर तक लाहौर में ही रहेगा, ताकि वह बागियों को गिरफ्तार करवाने का काम आसानी से पूरा कर सके।"

और इसके बाद बाबाजी ने अपनी उस सफलता का वर्णन शुरू किया, जिसके लिए उन्हें अमृतसर की यात्रा करनी पड़ी थी। वे बता रहे थे, "वहां पर असंख्य लोग थे वीरो। अकाल तख्त के पास तो सुई फेंकने की जगह नहीं थी, जब सर सुन्दरसिंह मजीठिया और अन्य कई बड़े-बड़े सिख रईसों ने बागियों के बारे में भाषण करना शुरू किया। फिर बहुमत से जयघोषों की गूंज में गुरुमता पास हुआ।"

"कौन-सा गुरुमता पिताजी?" वीरो ने अपने भावावेश को नियन्त्रित रखने का पूरा प्रयत्न करते हुए पूछा।

"तुम तो बिल्कुल पगली हो।" बाबाजी ने प्यार-भरे रोष में कहना शुरू किया, "उस दिन बताया नहीं था कि मैं किस उद्देश्य से अमृतसर जा रहा हूं? गुरुमते के शब्द ये थे—'विदेशों से आए हुए उन

सम्राट और उनकी सरकार के विरुद्ध बगावत कर रखी है। जिस ढंग को चेतावनी दी जाती है कि कोई भी गुट का जिस धन राजद्रोहियों से कोई सम्बन्ध न रखे। बल्कि जहाँ तक भी हो सके उन्हें गिरफ्तार करवाकर अपने सम्राट के प्रति अपनी राजभक्ति का कर्तव्य पूरा करे।"

गोरी चुपचाप सुनती जा रही थी और घुन-घुनकर घुलती हुई मछली की तरह बिंध भी रही थी। पर ऊपर-ऊपर से वह अपने पिता की बातें सुनती ऐसी लग रही थी मानो बहुत गहरी दिलचस्पी से सुन रही हो। बीच-बीच में वह प्रसन्न के भी शब्द बोलती जा रही थी।

अमृतसर से लौटने के बाद बाबाजी की व्यस्तता फिर से आरम्भ हो गई। भाई बिजली ने स्थायी रूप से उनके घर रहना स्वीकार कर लिया था। बेचारी निराश्रिता थी। महीनों से दरवाजे पर बैठी समय काट रही थी। बाबाजी ने गोरी को आदेश दे रखा था कि वह भाई को दोनों समय खाना खिलाया करे, जिसके बदले में वह घर की रखवाली किया करेगी। काम कर सकने के योग्य तो बेचारी थी नहीं।

गोरी के केवल विचारों में ही कई परिवर्तन नहीं आए थे बल्कि उसकी व्यस्तता ने भी कुछ नया मोड़ ले लिया था। पहले की तरह अब वह केवल पुस्तकों का ही कीड़ा नहीं बनी रहती थी, बल्कि इसके साथ-साथ एक और चीज भी उसके मन को बहलानेवाली बनती जा रही थी और वह था वही काला चमकदार खिलौना, जो न केवल उसके लिए मन-भाती वस्तु थी, बल्कि वह उसे किसीके प्रेम की निशानी भी मान चुकी थी। जब कभी भी उसे अवसर मिलता, दरवाजा बंद करके और भीतर की चिटकिनी लगाकर उसे लेकर बैठी रहती। कभी उसे उलटा-पलटाकर देखती, कभी खोलकर, कभी बन्द करके। बार-बार उसके मैगजीन में कारतूस डालती और बार-बार निकालती।

कई बार उसका मन होता कि उसे चलाकर देखा जाए। किसी अंधेरी रात में उसे लेकर ऊपर कोठे पर चली जाती और चारों ओर स्तब्धता देखकर वह इस काम के लिए तैयार भी हो जाती। पर जैसे ही उसकी अंगुली घोड़े को छूती कि 'अगर कोई...अगर कोई...' सोचते हुए फिर अंगुली को पीछे हटा लेती। ऐसी ही असफल चेष्टा वह कई बार करके

कि घर को ध्यान लगाकर बना दूँ, कभी दिल चाहता है…"

"बस-बस," दादाजी ने बीच बोलने से टोका, "मैंने इस रोग को समझ लिया है। बात तो कुछ भी नहीं है बेटा। किसी तरह का दबाव पड़ जाता है। इसका इलाज कोई मुश्किल नहीं। तीन दिन आराम करना, एकदम स्वस्थ हो जाओगी। जाओ, अन्दर जाकर आराम करो।"

और बीरी अन्दर जाकर लेट गई।

तीसरा भाग

२२

१ मार्च को सरकार की ओर से एक घोषणा-पत्र प्रकाशित करके बताया गया, जिसमें तीन भयानक क्रान्तिकारियों के पकड़े जाने की सूचना थी। और जिसमें विशेष रूप से उस विद्रोही—करतारसिंह सराभा—का वर्णन किया गया था, जो सबसे अधिक वारदातों के लिए पुलिस द्वारा ढूंढा जा रहा था और जिसकी गिरफ्तारी के लिए पहले से दुगुना पुरस्कार रखा जा चुका था। इसके अतिरिक्त उस घोषणा-पत्र में बड़े अभिमान और प्रशंसापूर्ण शब्दों में 'रिसालदार गंडासिंह' का वर्णन किया गया, जिसने उल्लेखनीय 'वीरता' से करतार और उसके दोनों साथियों को गिरफ्तार कराया। इस 'बहादुरी' के बदले में रिसालदार गंडासिंह को पंजाब सरकार ने बहुत-सी भूमि और पांच हजार रुपये नकद इनाम देने की सूचना भी दी थी।

उन लोगों का अधिक क्रोध गंडासिंह और उस जैसे अनेक पिट्ठुओं पर था, जिनके देश-द्रोह के कारण उनका हरएक कदम असफल होता चला जा रहा था। कृपालसिंह की करतूत अभी ताजी ही थी और इसके पश्चात् और भी कई पंजाबी इसी प्रकार की हरकतें करते चले आ रहे थे। पर रिसालदार गंडासिंह ने तो क्रान्तिकारियों में इतनी सख्त बौखलाहट पैदा कर दी कि उस स्थिति में वे लोग योग्य-अयोग्य की बुद्धि भी खो बैठे, जिसके फलस्वरूप घटनाओं का एक लम्बा सिलसिला आरम्भ हो गया। केवल पंजाब में ही नहीं, कई रियासतों में भी गड़बड़ शुरू हो गई, या ऐसे कहा जाना चाहिए कि इस सिलसिले की शुरूआत

२३

लाहौर सेंट्रल जेल के रंगमंच पर गत कुछ समय से एक 'कौंस-परेसी' नाटक खेला जा रहा था। अर्थात् पंजाब के क्रांतिकारियों के विरुद्ध मुकदमे की कार्यवाही हो रही थी। इस मुकदमे को 'लाहौर कौंसपिरेसी केस' का नाम दिया गया।

मुकदमे की सुनवाई तीन विशेष न्यायाधीशों का एक बोर्ड कर रहा था। तीनों में से दो अंग्रेज थे, और एक भारतीय। अंग्रेजों के नाम थे—ए० ए० इरविन और टी० पी० ऐलिस। और देसी था पंडित शिवनारायण, लाहौर का एक वकील सरकारी वकील के रूप में इंग्लैंड के एक प्रसिद्ध बैरिस्टर पिट मैन को बुलाया गया था।

इस मुकदमे का प्रारम्भ सेंट्रल जेल में २६ अप्रैल, १९१५ को हुआ। मुकदमे की सूची पर ८१ अपराधियों के नाम अंकित थे, जिनमें से पुलिस ६४ को गिरफ्तार कर चुकी थी, और शेष १७ फरार घोषित कर दिए गए थे।

कार्यवाही को सर्वसाधारण की दृष्टि से ओझल रखने के लिए जनता में से किसी को भी मुकदमा सुनने की अनुमति नहीं थी। यहां तक कि समाचारपत्रों के सम्वाददाता भी, सिवाय 'सिविल एण्ड मिलि-टरी गजट' आदि सरकारी अखबारों के, अन्दर नहीं आ सकते थे। कार्यवाही के विषय में छपी हुई रिपोर्ट कभी-कभी अखबारों को भेज दी जाती थी, पर उसमें सब कुछ मनमर्जी का होता। केवल यही नहीं, बल्कि अभियुक्तों के साथ पेशी के समय कई प्रकार का अवैधानिक और अपमानजनक व्यवहार भी किया जा रहा था।

यह बात बड़े दुःख वाली थी कि जनता की ओर से इन देशभक्तों को कोई सहायता या सहयोग नहीं दिया जाता था। उनके पत्र तो वैसे ही जेल-कानून के अनुसार जेलर के बिना पढ़े बाहर नहीं जा सकते थे। पर आश्चर्य की बात यह कि इतने बड़े प्रतिबन्धों के होते हुए भी मुकदमे की कार्यवाही की खबरें लोगों तक पहुंच जाती थीं और अभि-युक्तों की ओर से भेजे हुए गुप्त पत्र भी किसी न किसी ढंग से उनके सगे-सम्बन्धियों को मिल जाते थे, जिसके विषय में कोई कुछ नहीं जानता था कि कौन-से चित्रगुप्त की कृपा से यह सब हो जाता है।

ने ही की नहीं बल्कि दुखदायी भी होती है। इसलिए कैदी की यंत्रणा दुखदायी को दुर्गुणवान् स्पष्ट होती है। पर जाहिर है कि जेल के कर्मचारियों को कैदियों से भी बदतर बना दिया गया था। जेल के सभी छोटे-बड़े कर्मचारियों को कड़ा आदेश था कि किसी कठिनतम से भी बात न करें और पूरी कड़ाई से पेश आएं। कड़ाई का यह हाल था कि बाहर आए हुए कैदियों की इच्छा रहती थी कि अलग-अलग कोठरियों में रखा जाता, जहां एक-दूसरे से मिलने की सुविधा नहीं थी।

जेल की जिस ढंग से कोठरियां बनी हुई थी उनकी कुल सात कोठरियां थी—तीन ऊपर और तीन नीचे। इसमें से ही कोठरी नम्बर ११ में सर्वोत्पत्ति बराबर और उसके दो साथियों को ७ वर्ष को कठिन कारावास के दण्ड देकर लाए गए थे।

चाहे इस के बराबर सभी कोठरियों में ताला था, पर उनके दरवाजों की इतनी तरह बैठ जुड़ी थी कि दूर-दूर तक कोई दिखाई नहीं पड़ता। लोग इसे 'कोठरी नम्बर' कहते थे। इसकी प्रसिद्धि केवल बाहर ही नहीं, बल्कि जेल में भी थी। यही कारण था कि जिस दिन उसे यहां लाया गया, हरएक की जबान पर उसका नाम सुनाई देता था, मानो जेल में कोई तमाशा आ गया हो। हरएक उसे देखने को उत्सुक था।

जेलर और कैदी का रिश्ता प्रायः मेमने और भेड़िये वाला समझा जाता है; पर बराबर के व्यवहार से कर्मचारियों ने एक आश्चर्यजनक बात देखी कि वह जेलर और सुपरिन्टेंडेंट को भी 'तुम' कहकर सम्बोधित करता था।

[illegible] के अनुसार भाई परमानन्द का वंश सिख सम्प्रदाय के एक शहीद के वंश से सम्बन्धित था।

भाई परमानन्द का जन्म गांव करियाला, तहसील पिंड दादनखां, जिला जेहलम में हुआ था। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा 'चकवाल' गांव के एक स्कूल में प्राप्त की और उसके पश्चात् कलकत्ता से एम० ए० पास करके लाहौर के डी० ए० वी० कालेज में प्रोफेसर लग गए। फिर १९०५ में अफ्रीका चले गए।

समय इच्छा हो। फिर भी वर्षों व कई महीने पहले ही दण्ड लेने योग्य हो जाऊं ?"

मुकद्दमे की कार्यवाही जोर-शोर से चल रही थी। छुट्टी [illegible] को छोड़कर प्रायः नित्य ही पेशी हुआ करती। [illegible] से नये से नये और अनोखे गवाह उपस्थित होते, [illegible] प्रकार की गड़बड़ी पैदा हो जाया करती। कभी-कभी तो [illegible] में और भी तल्खी आ जाती जब किसी गवाह की गवाही अभियुक्त द्वारा चुनौती दी जाती और जब गवाहों का [illegible] प्रारम्भ कर देते। [illegible] नोक-झोंक का क्रम प्रायः चलता ही रहता।

गवाहों में अधिकतर पुलिस वालों, या गांवों से लाए गए बेनाम नम्बरदारों की बहुसंख्या हुआ करती, जिन्हें इस सेवा के बदले पुरस्कार मिलने की आशा दिलाई गई होती थी। उनमें कई तो इन युवकों की शक्ल-सूरत से भी अपरिचित हुआ करते—केवल पुलिस अधिकारियों की पढ़ाई गई पट्टी के आधार पर ही गवाही देते जाते थे।

जजों की अविचार-भावना सीमा के बाहर थी। नियमानुसार [illegible] के लिए यह आवश्यक होता है कि अभियुक्त का बयान जैसा का तैसा फाइल में दर्ज कर लिया जाए। पर यहां यह हाल था कि जो भाग उन्हें रुचिकर लगता वे दर्ज कर लेते। शेष सभी कुछ छोड़ देते। यदि इस सम्बन्ध में कोई अभियुक्त अथवा उनका वकील आपत्ति करता तो उत्तर देते—"इंडिया सेफ्टी ऐक्ट के अनुसार हमें ऐसा करने का अधिकार है।"

जिस दिन सराभा की पेशी होती उस दिन अदालत में सबसे अधिक हंगामा दिखाई देता। जैसे ही उसे अदालत के कमरे में उपस्थित किया जाता कि वह सबकी आंखों का केन्द्र बन जाता। वह हथकड़ियों में जकड़े हुए दोनों हाथों को खड़तालों की तरह बजाता हुआ, और शराबी की भांति झूमता हुआ कुछ न कुछ गाता हुआ भीतर प्रवेश करता। उसके गाए हुए गीत बाद में इतने लोकप्रिय हो गए कि लोग उन्हें गली बाजारों में गुनगुनाते हुए सुनाई देते। विशेषतया उसकी ये पंक्तियां तो बहुत ही लोकप्रिय हो गई थीं :

देश सेवा का काम बड़ा कठिन भाई
अपना पथ कितनी भारी दुश्वार भी ॥
पूरा जिस दिन इस काले बोझ का मुहाल होगा,
होर नहीं सबसे दुश्वारी बाकी हार भी ॥
पहुँच जाय दुश्मन जो भूल से पहाड़े भारी,
कहिए वे देश कितनी किसको दरकार भी ॥

और जब भी वह जजों के सम्मुख बोलना आरम्भ करता तो जजों की आँखें खुली ही रह जातीं—दोनों ही जब दोनों हाथ संभलते लगाने लगते।

यद्यपि दूसरे कई अभियुक्तों ने भी अपनी-अपनी पैरवी के लिए इस्तैसार बयान दिए थे, पर श्री करतारसिंह सराभा की पैरवी के लिए सदा होती बड़ी गर्मजोशी थी।

लगभग छः महीने इस मुकदमे की कार्यवाही होती रही, जिसमें सरकारी पक्ष से कुल ४०४ गवाह प्रस्तुत किए गए। जिनमें से सभी के सराभा के विरुद्ध तीन गवाह गुजरे।

अन्त में वह अवसर—जो पिछले छः महीनों से लाहौर की जेल के एकान्त घर देखा जा रहा था—१३ सितम्बर, १९१५ को समाप्त हुआ। वैसे तो सभी अभियुक्तों को कानून की अनेक धाराओं के अनुसार सजा सुनाई गई, परन्तु करतारसिंह सराभा पर सबसे अधिक धाराएं लगाई गईं, जो इस प्रकार थीं—धारा—१२१, १२२, १२४, १२५, १३१ १३० १२८, ३०२ और ३९२।

अभियुक्तों को—विशेषतया मृत्यु-दण्ड वाले अभियुक्तों को—जिस कुटिलता ढंग से फाँसी लगाने के लिए पंजाब सरकार ने पहले से ही निश्चय कर रखा था उसका उदाहरण शायद ही कहीं मिलता हो। इस मुकदमे के तीनों जज—जो पंजाब सरकार की कठपुतली बने हुए थे—सरकारी निर्णय के विरुद्ध कैसे कुछ कर सकते थे? फिर वहाँ की परिस्थितियां तो ऐसी थीं कि अंग्रेजों के विरुद्ध की गई बगावत का मुकदमा, और अंग्रेजी शासन के हाथ में न्यायाधिकार! फिर न्याय मिले तो कहां से मिले?

क्रांतिकारियों के विरुद्ध सबसे अधिक जिस व्यक्ति ने अत्याचार ढा रखा था वह था पंजाब का गवर्नर 'माइकल ओ' डायर',

तीन सीर्षकों से अधिक नहीं पढ़ सकी : "···ग़दर पार्टी के अभियुक्तों को १३ सितम्बर को सज़ा सुना दी गई। चौबीस को मृत्यु-दंड,···शेष को *कालापानी···बाग़ियों के बारूदी नेता करतारसिंह सराभा को भी मृत्युदंड···।"*

भीड़ को ठेलते हुए जब बीरी बाहर निकली तो उसकी टांगें लड़खड़ा रही थीं। प्रसाद वाली थाली उसके हाथ से गिरते-गिरते बची।

घर पहुंचते ही वह धड़ाम से खाट पर गिर पड़ी।

बाबाजी अब तक जगकर स्नान करने की तैयारी में लगे हुए थे कि भीतर आती हुई बीरी पर उनकी दृष्टि पड़ी। इस प्रकार लड़खड़ाते बीरी को उन्होंने इससे पहले कभी नहीं देखा था।

"क्या बात है बेटी ?" खाट पर बैठते हुए उन्होंने पूछा।

"कुछ नहीं पिताजी···ठीक हूं।" बीरी ने आंखें मलते हुए और अपने को संयत करते हुए कहा, "ऐसे ही ज़रा सिर में चक्कर आ गया था।"

वह पिता को अपने स्वस्थ होने का विश्वास दिलाना चाहती पर देखने वाला कोई अनजान बालक तो नहीं था जो उसकी आ जाता, जबकि बीरी के चेहरे पर बाबाजी को स्पष्ट पील[illegible] आ रहा था। इससे पहले भी प्रायः बाबाजी बीरी के चिन्तित हो जाते थे, जब कभी वे उसे अजीब-सी स्थिति में थे।

मन्त्र-तन्त्र में न केवल बाबाजी को विश्वास था, अपने को इस कला में प्रवीण समझते थे। आज देते आए थे। फिर अपनी बच्ची की ओर से वे कैसे नि[illegible] पर कठिनाई यह थी कि इस कार्य के लिए [illegible] तक मंत्र का जाप करना पड़ता था, और इतने [illegible] बैठना उनके लिए आसान बात न थी। [illegible] क्या नहीं करना पड़ता ? उन्होंने निश्चय कर [illegible] लिए दौरे का कार्यक्रम स्थगित करके सबसे पहले करेंगे। काम तो ज़िन्दगी में कभी पूरे नहीं होते। [illegible] हो गया तो क्या होगा ?

बीरी पर अवश्य ही किसी दुष्ट आत्मा की

याल में बीरी हद दर्जे की डरपोक और दुर्बल-हृदय लड़की है, जो ज़रा-सी भी भयभीत करने वाली बात को सहन नहीं कर सकती। उन्हें याद था कि सुदर्शन के यहां होते हुए भी जब किसी बाग़ियों इत्यादि की बात किया करते तो बीरी के हाव-भाव में अवश्य ही परिवर्तन आ जाता था। कई बार उन्होंने उपचार के लिए निश्चय किया था, पर कार्यक्रमों से उन्हें कभी अवकाश ही नहीं मिला। आज जब उन्होंने बीरी पर छाया के प्रकोप का अनुभव किया, तो अन्य सभी ओर से ध्यान हटाकर वे 'जाप' करने में व्यस्त हो गए। जिस स्थान पर बैठकर उन्हें बीरी का तांत्रिक उपचार करना था, उन्होंने उस स्थान को अपने हाथों से लीपा। आज संक्रांति का दिन इस काम के लिए शुभ था। पाठ-पूजा के लिए धूप, अगरबत्ती और अन्य आवश्यक वस्तुएं वे बाज़ार से ख़रीद लाए। पर यह सब कुछ धरा ही रह गया जब उन्हें डाक से जेहलम के डी० सी० की ओर से एक आवश्यक पत्र आ पहुंचा। पत्र अंग्रेज़ी में था। बीरी ने पढ़कर सुनाया। भाई की निरन्तर सहायता के परिणामस्वरूप यदि अधिक नहीं तो इतनी-सी अंग्रेज़ी की योग्यता उसने प्राप्त कर ली थी।

डी० सी० ने बाबाजी को तुरन्त बुला भेजा था जिसका अर्थ समझने में उन्हें देर न लगी, अर्थात् पुरस्कार के रूप में बांटी जाने वाली ज़मीनों के विषय में। उनके भाग में आने वाली ज़मीन के लिए डी० सी० ने उनकी राय लेना आवश्यक समझा होगा। अब तो वे अपनी मन-पसंद की चीज़ प्राप्त कर सकेंगे, यह अनुभव करके उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। कहां तो वे स्वयं इस काम के लिए डी० सी० से मिलने की बातें सोच रहे थे, और कहां भाग्यदेवी प्रसन्न हो उठी, कि स्वयं डी० सी० ने ही उन्हें तुरन्त बुला भेजा। उनके विचार में इससे बढ़कर सौभाग्य किसे कहा जा सकता था!

बीरी की समस्या चाहे कम महत्ता नहीं रखती थी, जिसके लिए वे कहीं भी न जाने का निश्चय कर चुके थे, परन्तु यह भी तो कठिन था कि भाग्यदेवी जब स्वयं आकर दरवाज़े पर दस्तक दे, तो वे अवसर को खो दें। अतः निश्चित फ़ैसले में थोड़ी-सी अदला-बदली करने के विचार [illegible] है नहीं। अब तो गाड़ी का समय निकल [illegible] से जाऊंगा, और संध्या [illegible]

उसमें कोई विशेष वस्तु नहीं थी। 'यादों की धूप' की कुछ पुरानी प्रतियाँ, कुछ कविताएँ और कुछ पत्र थे, जो मुर्तीन ने उसे लिखे थे। मुर्तीन की ओर से आए उन्हें कहीं बेरहमी से फेंक दिया गया। इस प्रकार का कोई भी कागज़ पत्र मैं न रखूँ, पर कौन जानता था कि वह उसके जीवन के हर भाग में बस जाता है, जो इतना पवित्र और उतना निश्छल है।

सबसे पहले उसने एक-एक करके पत्रों के पन्ने उलटने आरम्भ किए। उन्हीं पन्नों, जिन पर कभी उसने अपने मन की तस्वीर किसी दीवार से उतारकर चिपकाई थी, आँखों में समेटकर देर तक उन्हें देखती रही। देखते-देखते जब आँखों के आगे पानी की परत छा जाने पर उसे तस्वीर दिखाई देने में बाधा हुई तो दुपट्टे से आँखें पोंछने के बजाय उसने पत्रों को एक ओर रख दिया और फिर पत्रों को उलट-पलट करने लगी। मुतीन की अन्तिम चिट्ठी उसने लिफाफे में से निकाली।

प्रातःकाल की हल्की रोशनी के कारण कमरे में अभी तक पढ़ने योग्य प्रकाश नहीं था। वह चौखट में जाकर खड़ी हो गई, और उसे पढ़ने लगी। पढ़ते-पढ़ते उसकी मनोदशा किसी ओर दूर व्याकुल-सी ही हो गई। वैसे ही दरवाज़े से कान्ता लगाए खड़ी रही। उसकी आँखों की पुतलियाँ पथराती जा रही थीं और दिल की धड़कन तीव्र होती जा रही थी।

वहाँ से हटकर वह उसी सन्दूकची के पास आकर बैठ गई और सुस्त हाथों से सभी कुछ उसमें ही समेटने लगी।

प्रभात का धुंधलापन छँट चुका था। वास्तव में यह धुंध उसे अपनी आँखों की सरलता के कारण लग रही थी, जो बार-बार उसकी पुतलियों में तैरने लगती और जिसे पोंछने तक का उसे ध्यान नहीं था। इस कृत्रिम-सी धुंध में मीरी की आँखें बार-बार दो वस्तुओं के गिर्द घूम रही थीं। कभी पास पड़े हुए सन्दूक पर, कभी सामने रखी सन्दूकची पर। उसके कानों में वही वाक्य—'एक म्यान में····' बार-बार गूंज रहा था, जो वाक्य न रहकर इस समय मीरी को ठोस रूप में परिणत होता दिखाई दे रहा था। मानो बड़ा सन्दूक और छोटी सन्दूकची, ये दोनों तलवारें बन गए हों, और कमरा एक 'म्यान' के रूप में बदल गया हो।

सहसा उसपर कुछ ऐसा पागलपन-सा सवार हुआ कि सन्दूकची को उसने संदूक के नीचे सरका दिया और फिर झटके से बैग को उठा कर वह रसोईघर की ओर भागी।

फिर बीरो से एक और पागलपन हो गया, जो वह अचेत रूप से ही कर बैठी अथवा जानबूझकर, वह समझ नहीं सकी। उसने एक भयानक घटना को आमंत्रित किया। होश में रहते हुए भी वह यह नहीं समझ सकी कि यह निमन्त्रण उसने जानबूझकर दिया है या अनजाने में। तब एकदम बाहर निकलकर उसने शोर मचाना शुरू कर दिया—"पिताजी ! पिताजी, आग लग गई, जल्दी आइए···।"

झटपट बाबाजी सीढ़ियां उतरे। रसोईघर में जो कुछ उन्होंने देखा, सिर पकड़कर बैठ गए चूल्हे के पास कुछ चीजें जली हुई पड़ी थी और कुछ अधजली स्थिति में, जिनकी काली-काली राख पर ताजे गिराए पानी का गीलापन अभी विद्यमान था। बैग भी जला पड़ा था। केवल उसका अग्रभाग ही बचा था जो पीतल या लोहे का होने के कारण आग के प्रभाव से बच गया।

बाबाजी क्या देख रहे थे ? उनका भाग्य जलकर राख बना पड़ा था···उनका सुनहरा भविष्य विनाश के पेट में उतर चुका था।

'सत् तेरा सत्यानाश हो···! चिल्लाते हुए बाबाजी ने पूरे जोर से दोहरा थप्पड़ बीरो की पीठ पर दे मारा। इतने जोर का थप्पड़ सहन न करके बीरो मुंह के बल जमीन पर गिर पड़ी। बाबाजी का ध्यान उसी राख की ढेरी ने खींचा हुआ था। शीघ्रता से उन्होंने इस ढेरी को उलटना-पुलटना शुरू किया जो शायद उनके दुर्भाग्य ने थोड़ी-बहुत कसर रह गई हो, पर व्यर्थ। भीगी-भीगी राख के अतिरिक्त शायद वहां पर कुछ भी नहीं था। अलबत्ता जले हुए कागजों के बीच में कहीं-कहीं सफेद अंश था, पर केवल उतना ही जितना एक डूब चुके जहाज के बादबान का एक कोना।

पहला थप्पड़ बीरो के शरीर पर पड़ा था, और इसके पश्चात् दो, चार, पांच थप्पड़ बाबाजी ने अपने माथे पर मारते हुए एक तरह का विलाप आरंभ कर दिया—"हाय रे दुर्भाग्य—यह क्या हो गया क्षण-भर में ?" और साथ ही साथ वे बीरो को भी—जो अपने को संभालती हुई बैठ गई थी—कोस रहे थे, "तेरा सत्यानाश हो कुलनाशिनी !

कर दी।……"अब कागजों में क्या रक्खा है ! यदि कागज़ात खो गए तो इसका यह अर्थ तो नहीं कि सब कुछ चला गया। ऐसा कौन-सा दफ्तर है जिसमें मेरी जान-पहचान नहीं है ? लाहौर की सिट्टी ऐसी चीज़ नहीं थी जिसे लोग न जानते हों। कई अफ़सरों और बड़े लोगों की डायरियों में लिखी थी। डी० सी० को दिखाने की ज़रूरत भी क्या है ! दिखाने का तो मुझे ऐसे ही विचार आ गया था।"

गाड़ी से उतरे और स्टेशन से चलकर डी० सी० के दफ्तर पहुंचने तक सारा रास्ता तांगे में बैठे हुए वे इसी प्रकार के तर्क-वितर्क के तराजू से मान के भारी पलड़े को भारी करने में जुटे रहे। परिणामस्वरूप कोठी पहुंचने तक उनकी स्थिति में कुछ न कुछ सन्तुलन आ गया।

बुध का दिन खान बहादुर 'शेख मुहम्मद अमीन' डिप्टी कमिश्नर ने भेंट-मुलाकातों के लिए नियत किया हुआ था। इसलिए बाबाजी को मध्याह्न की बजाय कोठी जाना पड़ा। थैले में से चोगा निकालकर उन्होंने पहन लिया। तांगे में बैठे उन्होंने विशेष ध्यान रखा कि कहीं पीछे की तख्ती से रगड़ खाकर चोगा फट न जाए या उसमें कोई सिलवट न पड़ जाए। बहुत पुराना होने से उसके फटने का भय बना ही रहता था।

भेंट के कमरे में पहुंचकर बाबाजी को लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी। डेढ़ घंटे के पश्चात् जब उन्हें बुलाने के लिए चपरासी आया तो वे उठकर चले।

खां साहब का कमरा शाही ढंग से सुसज्जित था, जिसमें कई छोटे बड़े सोफे और कुर्सियां थीं। बाबाजी के दिल को झटका-सा लगा जब खां साहब ने उठकर हाथ मिलाने की अपेक्षा अकड़कर सामने रखी हुई एक साधारण-सी कुर्सी पर उन्हें बैठने को कहा जबकि बाबाजी ऐसे अफसरों के कंधे से कंधा जोड़कर बैठने के अभ्यस्त थे। एक तो पहले से ही उनकी तबियत परेशान थी, दूसरे यह अपमान, जिसे ज़हर का घूंट समझकर उन्हें पी जाना पड़ा। और सबसे बड़ा अपमान यह कि बिना कुशल-क्षेम पूछे, बिना किसी प्रकार की आवभगत किए खां साहब ने सरकारी अफसरों जैसे रूखे स्वर में उन्हें पूछा, "क्यों जी, सुदर्शनसिंह क्या आपका लड़का है ?"

भीतर ही भीतर तिलमिलाते हुए बाबाजी ने 'हां' में उत्तर दिया।

वे सोच रहे थे, इतना अभिमानी है यह जलमुहां कि 'बाबाजी' भी इससे कहते नहीं बना ?

मेज के दराज में से एक हल्की-सी फाइल निकालकर उसे उलटते हुए खां साहब ने उसे ठंडे लहजे में कहना शुरू किया—"कितने अफसोस की बात है कि एक पुराने वफादार की संतान इतनी गुमराह हो जाए ! फिर भी मैं समझता हूं कि आपका बहुत बड़ा सौभाग्य है कि आपको यह निर्देश देने का अवसर विशेष रूप से ऊपर से मिला है। वरना आप जानते हैं कि बड़े से बड़े जुर्म के लिए कानून में चाहे कुछ ढील आ जाए, पर बगावत के दोषी के लिए इसमें किसी प्रकार की भी रियायत की गुंजाइश नहीं है।"

खां साहब वैसे ही फाइल में ध्यान गड़ाए बोलते आ रहे थे। इधर बाबाजी पसीने से तर हो रहे थे। न केवल घोंघे का कसाव ढीला पड़ गया, बल्कि वे ऐसा अनुभव कर रहे थे मानो फांसी के तख्ते पर खड़े हों, और रस्सी का फंदा उनके गले में पड़ने ही वाला हो।

वैसे ही खां साहब रुके कि एक, दो, तीन बार खांसकर, मानों रुकते आते गले को खोलने का यत्न कर रहे हों, बड़ी दीनता से वे बोले, "क्षमा करना जनाब (खां साहब के स्थान पर जनाब शब्द निकालते समय उनके होंठों में थिरकन-सी पैदा हो गई) आपकी बात मेरी समझ में······।"

"ठहरिए," खां साहब वैसे ही फाइल देखते हुए ऐसे गरजे मानो किसी नौकर को हुक्म दे रहे हों। जिसे सुनकर बाबाजी फिर बोलने का साहस न कर सके। उनकी आंखों के सामने अंधेरा छा रहा था।

फाइल को देखते रहने के पश्चात् खां साहब ने कहा, "आपने क्या कहा, कि मामला आपकी समझ में नहीं आया ?"

"सच कह रहा हूं हुजूर।" बाबाजी रोनी-सी आवाज में इस बार 'हुजूर' कहकर गिड़गिड़ाए, "मैं अपने गुरु परमात्मा की साक्षी देकर कह रहा हूं कि मुझे ऐसी किसी भी बात की आज तक कोई जानकारी नहीं है। यदि ऐसा होता तो मैं अपने हाथों से अपनी संतान का गला घोंट देता।"

यदि ऊष्णता से पत्थर में तरलता का आ जाना संभव है तो यह भी संभव है कि बाबाजी की स्थिति को देखकर, उनकी गिड़गिड़ाहट

आप तुरन्त चले आइए और जैसे भी संभव हो सके,
नाने के लिए मनवाकर साथ ले आएं। एक और ब
अगर इसमें देरी की गई तो ...
बुरा हो। इधर मुझपर बड़ा भारी दोष
में मैं दीन कर रहा हूं, उधर न केवल आपके बचाव के
जाएंगे, बल्कि अब तक आपने सरकार की जितनी भी
मिट्टी में मिल जाएगी। यह भी संभव है कि आपके नि
कदम भी उठाया जाए। आपके लड़के को तो इस सूरत
मिलेगा, जो दूसरे बागियों को मिल रहा है। १३ हिरम्
जो हुक्म सुनाया गया है, आप अखबारों में पढ़ ही चुके होंगे

खां साहब के भाषण का अंतिम भाग बाबाजी नहीं
उनके सिर में और भी तेज चक्कर आने शुरू हो गए।

"अच्छा जाइए।" कहकर खां साहब सोफे पर से उ
और बिना कुछ कहे पिछले दरवाजे से भीतर चले गए, जिसका
को तभी पता चला जब अरदली ने प्रवेश किया, जिसके आग
बाबाजी के लिए अर्थ था, 'चलते बनो।'

कमरे में से निकलते समय बाबाजी की टांगों पर हजारों
चल रही थीं। दोपहर की कड़कती धूप में भी उनकी आंखों के
संध्या का धुंधलापन छाया हुआ था। उन्होंने घोगा उतारकर ह
पकड़ लिया।

रेलवे स्टेशन पर पहुंचकर उन्होंने हिरणपुर के बजाय लाहौर
टिकट खरीदी। बीरी मरे चाहे जीए। जो हो चुका है उसे छोड़
जो होनेवाला है उसीकी चिंता उन्हें खाए जा रही थी।

२७

बाबाजी के जेहलम चले जाने के पश्चात् बीरी के दिल को थोड़ा
सा संतोष हुआ कि आज घर में उसकी मानसिक या शारीरिक स्थिति
को परखने-जांचने वाला कोई नहीं है। भीतर से बाहर और बाहर से
भीतर। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया उसकी मानसिक बेचैनी
बढ़ती जा रही थी। उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि वह

आप तुरन्त चले जाइए और जैसे भी संभव हो सके, लड़के को मुफ नामे के लिए मनवाकर साथ ले आएं। एक और बात बता दूं मगर इसमें देरी की गई तो इसका नतीजा शायद हम दोनों के लि बुरा हो। इधर मुझपर बड़ा भारी दोष लगेगा कि मुलजिम को पक मे मैं ढील कर रहा हूं, उधर न केवल आपके बचाव के रास्ते बन्द जाएंगे, बल्कि अब तक आपने सरकार की जितनी भी सेवा की मिट्टी मे मिल जाएगी। यह भी संभव है कि आपके लिए कोई क कदम भी उठाया जाए। आपके लड़के को तो इस सूरत में वही मिलेगा, जो दूसरे बाग़ियों को मिल रहा है। १३ सितम्बर को उन जो हुक्म सुनाया गया है, आप अखबारों में पढ़ ही चुके होंगे।"

खां साहब के भाषण का अंतिम भाग बाबाजी नहीं सुन सके। उनके सिर में और भी तेज चक्कर आने शुरू हो गए।

"अच्छा जाइए।" कहकर खां साहब सोफे पर से उठ खड़े हुए और बिना कुछ कहे पिछले दरवाजे से भीतर चले गए, जिसका बाबाजी को तभी पता चला जब अरदली ने प्रवेश किया, जिसके आगमन का बाबाजी के लिए अर्थ था, 'चलते बनो।'

कमरे में से निकलते समय बाबाजी की टांगों पर हजारों चींटियां चल रही थीं। दोपहर की कड़कती धूप में भी उनकी आंखों के सामने संध्या का धुंधलापन छाया हुआ था। उन्होंने चोगा उतारकर हाथ में पकड़ लिया।

रेलवे स्टेशन पर पहुंचकर उन्होंने हिरनपुर के बजाय लाहौर की टिकट खरीदी। बीरी मरे चाहे जीए। जो हो चुका है उसे छोड़कर, जो होनेवाला है उसीकी चिंता उन्हें खाए जा रही थी।

२७

बाबाजी के जेहलम चले जाने के पश्चात् बीरी के दिल
सा संतोष हुआ कि आज घर में उसकी ... था,
को परखने-जांचने वाला कोई नहीं है।
भीतर। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता
बढ़ती जा रही थी। उसे कुछ

या करे, कैसे अपने निराश मन को धैर्य बंधाए।

'सरामा इस संसार से कूच करने वाला है। उसे मृत्युदंड मिल चुका है। वह फांसी पर लटकने ही वाला है। क्या मैं उसे, संसार छोड़ने के पूर्व, एक बार भी नहीं देख सकूंगी? क्या यह असम्भव है? यह तो तभी सम्भव हो सकता है, यदि पिताजी से आते ही उन्हें कहूं कि वे मुझे मामाजी के यहां छोड़ आएं। उन्हें भी लाभ होगा कि वे दौरे पर जितने दिन चाहें लगाएं। क्या वे स्वयं अनुभव नहीं करते होंगे कि मैं घर में अकेली हूं? कह दूंगी कि घर में अकेले रहने से मुझे भय लगता है। और भय के परिणामस्वरूप ही मुझे दौरे आने लगे हैं। अब तो भाई भी चले गए हैं। ऐसी स्थिति में मुझे मामाजी के यहां भेजने में उन्हें और भी संतोष मिलेगा। तो बस, यही ढंग उचित रहेगा। मामा के पास चले जाने के पश्चात् लाहौर जाना मेरे लिए कठिन नहीं होगा—कोई न कोई बहाना बनाकर चली जाऊंगी।' इस निर्णय पर पहुंचकर उसके मन को कुछ संतोष हुआ।

बीरी को विश्वास था, जैसा कि बाबाजी आते समय उसे कह गए थे, कि वे संध्या समय लौट आएंगे, पर संध्या छोड़ जब रात भी गुज़र गई तो उसका भय बढ़ना शुरू हो गया, और इस चिन्ता के कारण उसके सामने कई प्रकार के भयानक चित्र उभरते चले आए—डी॰ सी॰ ने उन्हें बुलाया है···कहते थे कि ज़मीन···इनाम···पर डी॰ सी॰ के निमन्त्रण का क्या यही अर्थ हो सकता है? शायद भैया के विषय में···और जो मैंने यह काम किया है, क्या उसे पिताजी का हृदय सहन कर सकेगा? एकदम सिर की चोट-सा?···कहीं निराश होकर···'

दूसरा दिन भी गुज़र गया, फिर तीसरा भी। पर बाबाजी नहीं लौटे, न ही उनके लौटने के विषय में कोई पत्र-सन्देशा ही प्राप्त हुआ। पहले भी प्रायः ऐसा होता रहता था। जब भी उन्हें दौरे से लौटने में निश्चित समय से अधिक लग जाता, तो वे पत्र अथवा सन्देश आदि भेज दिया करते थे। इस बार तो उनके लिए यह और भी आवश्यक था, जबकि वे बीरी को बीमारी की हालत में छोड़कर गए थे—जिसका उन्होंने वापस आकर ही उपचार करना था।

आज बीरी का मन बहुत उदास था। उसे कुछ भी अच्छा नहीं

आप तुरन्त चले जाइए और जैसे भी संभव हो सके, लड़के को छुड़ाने के लिए सरकार से अपील करें। एक और बात बता दूं, अगर इसमें देरी की गई तो इसका नतीजा शायद हम दोनों के लिए बुरा हो। इधर मुझपर बड़ा भारी दोष लगेगा कि मुजरिम की पक्ष में मैं ढील कर रहा हूं, उधर न केवल आपके बचाव के रास्ते बन्द हो जाएंगे, बल्कि अब तक आपने सरकार की जितनी भी सेवा की, सब मिट्टी में मिल जाएगी। यह भी संभव है कि आपके लिए कोई सख्त कदम भी उठाया जाए। आपके लड़के को तो इस सूरत में वही दण्ड मिलेगा, जो दूसरे बागियों को मिल रहा है। १२ दिसम्बर को जिन्हें जो हुक्म सुनाया गया है, आप अखबारों में पढ़ ही चुके होंगे।"

खां साहब के भाषण का अंतिम भाग बाबाजी नहीं सुन सके। उनके सिर में और भी तेज चक्कर आने शुरू हो गए।

"अच्छा जाइए।" कहकर खां साहब सोफे पर से उठ खड़े हुए और बिना कुछ कहे पिछले दरवाजे से भीतर चले गए, जिसका बाबाजी को तभी पता चला जब अरदली ने प्रवेश किया, जिसके आगमन का बाबाजी के लिए अर्थ था, 'चलते बनो।'

कमरे में से निकलते समय बाबाजी की टांगों पर हजारों चींटियां चल रही थीं। दोपहर की कड़कती धूप में भी उनकी आंखों के सामने संध्या का धुंधलापन छाया हुआ था। उन्होंने चोगा उतारकर हाथ में पकड़ लिया।

रेलवे स्टेशन पर पहुंचकर उन्होंने हिरणपुर के बजाय लाहौर की टिकट खरीदी। बीरो भरे चाहे जीए। जो हो चुका है उसे छोड़कर, जो होनेवाला है उसीकी चिंता उन्हें खाए जा रही थी।

२७

बाबाजी के जेहलम चले जाने के पश्चात् बीरो के दिल को थोड़ा-सा संतोष हुआ कि आज घर में उसकी मानसिक या शारीरिक स्थिति को परखने-जांचने वाला कोई नहीं है। भीतर से बाहर और बाहर से भीतर। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया उसकी मानसिक बेचैनी बढ़ती जा रही थी। उसे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि वह

क्या करे, कैसे अपने निराश मन को धैर्य बंधाए।

'सराभा इस संसार से कूच करने वाला है। उसे मृत्युदंड मिल चुका है। वह फांसी पर लटकने ही वाला है। क्या मैं उसे, संसार छोड़ने के पूर्व, एक बार भी नहीं देख सकूंगी? क्या यह असम्भव है? यह तो तभी सम्भव हो सकता है, यदि पिताजी से आते ही उन्हें कहूं कि वे मुझे मामाजी के यहां छोड़ आएं। उन्हें भी लाभ होगा कि वे दौरे पर जितने दिन चाहें लगाएं। क्या वे स्वयं अनुभव नहीं करते होंगे कि मैं घर में अकेली हूं? कह दूंगी कि घर में अकेले रहने से मुझे भय लगता है। और भय के परिणामस्वरूप ही मुझे दौरे आने लगे हैं। अब तो माई भी चली गई है। ऐसी स्थिति में मुझे मामाजी के यहां भेजने में उन्हें और भी संतोष मिलेगा। तो बस, यही ढंग उचित रहेगा। मामा के पास चले जाने के पश्चात् लाहौर जाना मेरे लिए कठिन नहीं होगा—कोई न कोई बहाना बनाकर चली जाऊंगी।' इस निर्णय पर पहुंचकर उसके मन को कुछ सन्तोष हुआ।

बीरी को विश्वास था, जैसा कि बाबाजी जाते समय उसे कह गए थे, कि वे सन्ध्या समय लौट आएंगे, पर सन्ध्या छोड़ जब रात भी गुज़र गई तो उसका मन बढ़ना शुरू हो गया, और इस चिन्ता के कारण उसके सामने कई प्रकार के भयानक चित्र उभरते चले आए—डी॰ सी॰ ने उन्हें बुलाया है'''कहते थे कि ज़मीन'''इनाम'''पर डी॰ सी॰ के निमन्त्रण का क्या यही अर्थ हो सकता है? शायद भैया के विषय में'''और जो मैंने यह काम किया है, क्या उसे पिताजी का हृदय सहन कर सकेगा? एकदम सिर की चोट-सा?'''कहीं निराश होकर'''

दूसरा दिन भी गुज़र गया, फिर तीसरा भी। पर बाबाजी नहीं लौटे, न ही उनके लौटने के विषय में कोई पत्र-सन्देश ही प्राप्त हुआ। पहले भी प्रायः ऐसा होता रहता था। जब भी उन्हें दौरे से लौटने में निश्चित समय से अधिक लग जाता, तो वे पत्र अथवा सन्देश आदि भेज दिया करते थे। इस बार तो उनके लिए यह और भी आवश्यक था, क्योंकि वे बीरी को बीमारी की हालत में छोड़कर गए थे—जिसका उन्होंने वापस आकर भी उपचार करना था।

आज बीरी का मन बहुत उदास था। उसे

तक कुछ नहीं कर सकते जब तक कि हम जेल में से अपने साथियों स्वतन्त्र नहीं करवा लेते। इस समय हम एक नई योजना को कार्य-रूप देने में व्यस्त हैं, जिसके अनुसार शीघ्र ही पंजाब की जेलें तोड़ हम अपने भाइयों को छुड़ाने में सफल होने की आशा रखते हैं। जिस दिन से अब तक हमारा प्रमुख नेता करतारसिंह सराभा पकड़ा गया, तब तक हमारा खाना-पीना हराम है। यह तो तुम भी सुन चुकी होगी कि उसे और उसके कई दर्जन साथियों को मृत्यु-दण्ड और कालेपानी की सजा हो चुकी है। हमें सिवाय इसके और कुछ सूझता नहीं कि जितनी जल्दी हो सके, जेल के दरवाजे तोड़कर और फांसी की कोठरियां उखाड़कर अपने साथियों को मुक्ति दिलाएं।

"इस समय हम लगभग आधे दर्जन युवक 'गुप्तासिंह' लुधियाना वाले की अध्यक्षता में काम कर रहे हैं। हमारा काम किसी क्रांतिकारी कार्यवाही में सीधा भाग लेना नहीं, बल्कि काम करने वालों की हर प्रकार से सहायता करना है। चूंकि गुप्तासिंह पार्टी का विशिष्ट सदस्य है, अतः वह आन्तरिक कार्यों में भी भाग ले रहा है। डाके डालने में भी गुप्तासिंह ने खूब वीरता दिखाई। जिस वस्तु की कमी इस समय हमारे कार्य में रोक बनी हुई है, वह है अस्त्र-शस्त्र। जेलें तोड़ने के लिए हमारे सभी सहयोगियों का अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होना आवश्यक है। इसी कार्य के लिए कुछ दिन पूर्व कुछ सरकारी रिक्रूटों पर हमला करने की योजना बनाई गई थी, पर दुर्भाग्य से हमारे इस प्रकार के कई प्रयत्न असफल रहे; हमारे कुछ सक्रिय साथी गिरफ्तार कर लिए गए और कुछेक मारे भी गए। पर इसका मतलब यह नहीं कि इन असफलताओं ने हमारा साहस तोड़ दिया, बल्कि हमने और भी तेजी से अपना दूसरा कार्य आरम्भ कर दिया। और यह काम था उन सरकारी पिट्ठुओं को मृत्यु के घाट उतारना, जो हमारे सहयोगियों को गिरफ्तार करवाने में पुलिस की सहायता करते रहे, अथवा जिन्होंने झूठी गवाहियां देकर और मुखबिरी करते हुए बहुत-से क्रांतिकारियों को फंसाया।

"बहुत लम्बे किस्से हैं बीबी, जो विस्तार से जबानी ही सुनाए जाने वाले हैं, पर न जाने जीवन में इसका अवसर मिल सकेगा या नहीं। क्योंकि आजकल सी० आई० डी० बहुत बुरी तरह हमारा पीछा

कर रही है, जबकि हमारी पार्टी ने अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया, सिवाय इसके कि हम कार्यकर्ताओं में परस्पर तालमेल स्थापित रखने के लिए काम कर रहे हैं। माता गुलाबकौर भी हममें से एक हैं—हमारा ध्यान रखने वाली और पार्टी की आत्मा। क्योंकि ये बहुत पुरानी कार्यकर्ता हैं, इसलिए पार्टी के सभी छोटे-बड़े भेदों का इन्हें ज्ञान है।

"पत्र लम्बा करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि माता गुलाबकौर की जबानी तुम्हें आवश्यक बातें मालूम हो सकती हैं। अतः एक-दो बातें लिखकर चिट्ठी समाप्त करता हूं।

"हमारी पार्टी को इस समय मर्दों से अधिक स्त्री कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है बीरो। इस समय लगभग सभी कार्यकर्ताओं का पीछा सी० आई० डी० कर रही है। इसलिए कई काम ऐसे भी आ पड़ते हैं जो केवल स्त्रियों द्वारा ही पूरे किए जा सकते हैं। पर इसे पार्टी का दुर्भाग्य ही कहिए कि माता गुलाबकौर के अतिरिक्त इस समय, पंजाबी क्रांतिकारियों में कोई भी अन्य स्त्री कार्यकर्ता नहीं है, जबकि बंगाली क्रांतिकारियों में तुम्हारी उम्र की दर्जनों लड़कियां काम कर रही हैं।

"अकेली माता गुलाबकौर ने अब तक जितने भी कार्य किए और कर रही हैं, शायद एक दर्जन आदमी भी उतना नहीं कर सकते। पर पार्टी को इस बात का अनुभव होता है कि ये बेचारी अनपढ़ हैं, जबकि पार्टी के कई काम ऐसे भी हुआ करते हैं जिनके निभाने के लिए शिक्षित होना आवश्यक है। बहुत समय से इस कमी को अनुभव करने के पश्चात् हम लोग इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि माता गुलाबकौर को एक पढ़ी-लिखी और चुस्त-चालाक सहायिका मिलनी चाहिए। चारों ओर से घूमकर हमारी नजर अगर कहीं टिकती है तो बीरो, तुमपर। बल्कि सच तो यह है कि तुम्हारे बिना अन्य कोई नहीं, जिसे तुम्हारी तुलना में खड़ा किया जाए। विशेष-रूप से इस समय इसकी आवश्यकता और भी अधिक अनुभव की जा रही है, जबकि माता के न केवल वारण्ट जारी हो चुके हैं, बल्कि इनकी गिरफ्तारी के लिए इनाम भी घोषित किया गया है। इसलिए पहले की तरह इनका अब आम घूमना-फिरना खतरनाक समझा जाता है। चाहे अभी तक ये वेश-भूषा बदल-कर अपने कार्यों को निभाती चली आ रही हैं, पर आवश्यकता इस

बात की है कि पढ़ने-लिखने में इसको एक सहायिका है, जो आवश्यक कामों के लिए गुप्त स्थान पर बैठकर निर्देश देती रहे। मुझे विश्वास है कि तुमसे अच्छी सहायिका शायद इन्हें अन्य कोई मिल सकती।

"यह मैं जानता हूँ बीरी, कि सन्तान होने के नाते तुम्हें माँ-पिताजी की भी चिन्ता करनी चाहिए। यह भी समझता हूँ कि तुम घर से लापता हो जाओगी, तो पिताजी की क्या दशा होगी। पर बहन, देश के लिए यदि हमें माँ-बाप का बलिदान भी देना पड़े तो कोई पाप नहीं है। एक बार तुम गरामा से भी हट कर चुकी हो कि तुम घर से बाहर किसी हालत में भी नहीं आ सकतीं। अब तुम स्वयं विचार लो कि तुम्हारे लिए देश बड़ा है या माँ-बाप।

"सम्भव है कि मैं शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिया जाऊँ; और गिरफ्तारी का मतलब होगा मृत्यु या कालेपानी की सजा। अतः यदि सचमुच तुम्हारे मन में क्रान्तिकारी भावना है—जिसका दावा तुम सदा किया करती हो—तो मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ कि दिल को चट्टान-सा बना लो। बीरी, बहन को भाई प्रिय होते हैं। पर तुम्हारे जैसा तुम्हारा स्नेह है, इसका उदाहरण शायद ही किसी बहन में मिले। परन्तु दूसरी ओर तुम्हें यह भी भूलना नहीं चाहिए कि माँ को सन्तान का प्रेम, बहन से भी कहीं बढ़कर होता है। और हम तीस करोड़ पुत्र-पुत्रियों की माँ आज विदेशी-अत्याचारियों की जंजीरों में जकड़ी है। अतः तुम स्वयं विचार कर लो कि तुम्हें एक भाई अधिक प्रिय है या तीस करोड़ सन्तानों की माँ के लिए बलि देने के लिए तैयार हो? बस, इतना ही।

तुम्हारा भैया—
सुदर्शन।"

इधर बीरी ने पत्र समाप्त किया, उधर गुलाबकौर ने उसके चेहरे से नजर हटाई। वह बीरी के चेहरे से बराबर कुछ पढ़ने की चेष्टा में लगी हुई थी।

गुलाबकौर को लेकर जब बीरी कमरे में गई तो पीछे आ रही गुलाबकौर ने इन शब्दों में अपने उद्‌गारों की अभिव्यक्ति की, "रघुबीर! मैंने समझा था कि तुम होगी कोई बड़े दिल वाली लड़की,

परन्तु तुम तो पहुंची हुई हो वहां पहुंचने के लिए मेरी बेटियों को तुम्हारी शिष्या बनना चाहिए।"

"आप क्या कह रही हैं माता जी?" लज्जित होती हुई वह बोली, "मैंने तो अभी आपके साथ बातचीत भी नहीं की है।"

"जबान और कान से ही तो सभी बातें कही-सुनी नहीं जातीं बेटी। मेरा हुआ अक्षर में पढ़ी-लिखी नहीं, पर सात समुद्र का पानी तो पीए हूं। जैसे तुमने पत्र में से अपने भैया का हाल-चाल पढ़ा है, वैसे ही मैंने तुम्हारे चेहरे से तुम्हारे मन का। सुना तो तुम्हारे सम्बन्ध में सुदर्शन से बहुत कुछ था, पर सोचती थी, शायद ऐसे ही लड़का अपनी बहन के गुणों के पुल बांध रहा होगा। पर..."

"छोड़िए इन बातों को माताजी।" बीरो ने उसे टोका, "फुर्सत पाकर बातें करेंगे। आप जरा लेट जाइए, थक गई होंगी, मैं तब तक आपके लिए दो रोटी सेंक लूं।"

"अच्छा बिटिया।" चारपाई पर लेटती हुई गुलाबकौर बोली, "बाहर से मेरी टोकरी और गठरी उठाकर सम्भालकर रख देना।"

"अच्छा, "कहकर बीरो बाहर जाने के लिए मुड़ी। गुलाबकौर ने उससे पूछा, "घर में कोई और व्यक्ति तो नहीं है।"

"नहीं माताजी।" वह बोली, "पिताजी बाहर गए हुए हैं।"

"तुम घर में अकेली हो?"

"अकेली क्यों, माताजी?" वह हंस पड़ी, "सरामाजी का दिया हुआ सहायक जो मेरे पास है।"

"मुझे मालूम है, सुदर्शन ने मुझे सब कुछ बतलाया था।"

बीरो को रसोईघर में पहुंचे पांच-सात मिनट ही हुए थे—उसने चूल्हे में केवल आग ही जलाई थी कि गुलाबकौर यह कहती हुई उसके निकट आ बैठी, "मैंने सोचा, बातें बहुत-सी करने वाली हैं, पर मेरे पास इतना समय है नहीं। क्यों न दोनों कार्य साथ-साथ हों। पेट-पूजा का भी और बातों का भी।"

"माताजी," बीरो बैठने को चौकी उसकी ओर सरकाती हुई बोली, "आप दो घड़ी विश्राम तो कर लेतीं।"

"विश्राम क्रांतिकारियों के भाग्य में कहां? विश्राम या तो मृत्यु के पश्चात् या स्वतन्त्र होकर ही किया जा सकेगा। हां, यह बताओ

कि भाईजी ने तुम्हारे लिए भी कभी सोचा कि नहीं ?"

"भाईजी के ?" बीरो के मन में विषाद छा गया था, "वे भाभाजी, केवल [illegible] हुए हैं।"

उत्तर में गुलाबकौर ने अपनी जानकारी के अनुसार बताया कि बीबी का पिता डाकखाने पुत्र को खोज में यहाँ वहाँ फिरता है। और फिर उसने बताया कि उसकी पुलिस पुलिस वालों को भी० आई० डी० वैसी तो नहीं फिर भी इसी तरह की एक [illegible] के [illegible] किये जाते हैं। कई इनाम [illegible] हुआ है कि पुत्र को गिरफ्तार करवाने के लिए एक डाकखाना यहाँ आया करता है।

'हाय, मैं मर गई !" बीरो का हाथ अपना काम करते हुए रुक गया, "आप यह क्या कह रही हैं भाभाजी ?"

उत्तर में और [illegible] गुलाबकौर ने बताया, पुत्र में से बीरो के लिए अविश्वास करने की कोई गुंजाइश देख नहीं पड़ रही थी। घबराहट में उसका गला सूखने लगा। उसकी स्थिति को ताड़ते हुए गुलाबकौर बोली, 'यह कोई घबराने की बात नहीं है बिटिया। सरकार-भक्त मां-बाप को सन्तान से भी बढ़कर सरकार की खुशि प्रिय होती है। अच्छा अब छोड़ो इन बातों को, और मेरी बातें ध्यान से सुन लो।"

बीरो चाहे बड़ी घबराहट में थी, पर बातें सुनने के लिए उसने प्रयासपूर्वक घबराहट को वश में कर लिया।

"अच्छा, मुझे यह बताओ कि वह काला कबूतर कहाँ है जो सराबा ने दिया था तुम्हें ?"

बीरो काले कबूतर का मतलब जानती थी। वह बोली, "संभाल-कर रखा हुआ है भाभाजी—क्यों ?"

"वह मुझे दे दो, और उसके बदले में तुम्हें मैं दूसरा देती हूं।" कहती हुई गुलाबकौर उठी। बाहर जाकर अपनी टोकरी को टटोल-कर उसमें से एक छोटे आकार का रिवाल्वर निकालती हुई वह बोली, "यह उससे भी बढ़कर कीमती है, जर्मनी का बना हुआ। लड़कियों के हाथ में बड़ी चीज़ अच्छी नहीं लगती, साथ ही दिख जाने का भी खतरा रहता है।"

"बीरो ने उसे पकड़कर, उलट-पुलटकर देखा। सचमुच पिस्तौल मनमोहक और छोटे आकार का था। बीरो के छोटे-छोटे हाथों में यह बड़ा सुन्दर लग रहा था। इससे पहले कि वह उत्तर में कुछ कहती, गुलाबकौर बोली, "जरा आने-जाने वालों का भी ध्यान रखना बेटी। क्या पता तुम्हारे पिताजी ही आ निकलें, या और कोई। जैसे ही किसी को आता देखना मुझसे चूड़ियों के भाव का झगड़ा आरम्भ कर देना। यह लो ये चूड़ियां हाथ में पहन लेना। हम लोगों को बड़ा सावधान रहना पड़ता है बिटिया।" और उसने अच्छी-सी चूड़ियां, जो वह टोकरी में से निकाल लाई थी, बीरो की बाहों में डाल दीं। फिर बोली, "जाकर बड़ा कबूतर निकाल लाओ, साथ ही उसके अण्डे भी। उसके बदले में मैं तुम्हें छोटे अंडे गठरी में से निकालकर ला देती हूं।"

ज्योंही बाहर आने के लिए गुलाबकौर उद्यत हुई, बीरो ने उसे बांह से पकड़कर यह कहते हुए बैठा दिया, "इसके लिए मुझे क्षमा करना माताजी, यह मुझसे नहीं हो सकता।"

"क्यों?" गुलाबकौर ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

"आप तो मां तुल्य हैं माताजी, आज पहली बार यह भेद जबान पर लाने लगी हूं कि…कि…" और बीरो की जबान मानो लड़खड़ाने लगी।

"बताओ बिटिया, क्या कहती हो?"

"माताजी, छोटा-मुंह बड़ी बात। पर जो बात किसीके बूते से बाहर हो उसका कोई क्या करे! यह कबूतर आपके लिए तो पार्टी के काम आने वाला होगा, पर मेरे दिल से कोई पूछकर देखे। मैंने उसे किसीके प्यार की निशानी समझकर रखा हुआ है, माताजी। जीते-जी मैं उससे विलग नहीं हो सकती, चाहे आपको यह बुरा लगे।"

"प्यार की निशानी?" गुलाबकौर ने उसकी ओर ऐसे ताका मानो बीरो बेहोशी में बोल रही हो।

"हां माताजी—प्यार की।" बीरो के चेहरे पर कुमारी-सुलभ लालिमा विद्यमान थी।

"पर वह तो तुम्हें … …"

"उन्हींने दिया था।"

करता होगा ?"

बीरी ने उत्तर में कुछ नहीं कहा। उसकी खामोशी में ही प्रश्नों का उत्तर पढ़ती हुई गुलाबकौर बोली, "पगली लड़की, मनसूर सूली पर चढ़कर गाने-झूमने लगा था, तो क्या इस तरह कि उसके ऐसा करने से मृत्यु से उसका बचाव हो जाएगा ? क्रांति योजना जिस सीमा पर पहुंच चुकी है, वहां आशा तो आटे में नमक जितनी ही रह गई है, और चाहे इतनी भी न हो। पर क्या तुम समझती हो कि क्रांतिकारी बहोली को निराश होकर अपना मार्ग बदल लेता है ?"

"बस माताजी," बीरी ने उसके पांव छूते हुए कहा, "समझ गई। अब और कुछ पूछना मेरे लिए शेष नहीं रहा।"

पर बीरी के कहने पर भी वह रुकी नहीं, "इस समय हमारे सम्मुख क्रांति लाने से भी बड़ा निशाना है जाति के शत्रुओं से जूझना। मेरा मतलब है अंग्रेजों के कुत्तों का बीज नष्ट करना। पहली बात की तो अब अधिक आशा नहीं, क्योंकि जेलें तोड़ने के लिए जितनी शक्ति एवं जितने साधनों की आवश्यकता थी, वह हम जुटा नहीं सके। बाकी लेकर इस समय हमारा काम बस यही है।"

"आपका मतलब देशद्रोहियों को कत्ल करने से है ?"

"हां, जेल से सराभा की और दूसरे नेताओं की भी यही चेतावनी बार-बार आ रही है कि किसी दूसरी ओर ध्यान देकर समय मत नष्ट करो। पकड़े जाने या मारे जाने से पूर्व जहां तक भी हो सके, देशद्रोहियों की जड़ें उखाड़ फेंकने की चेष्टा करो।"

खाना तैयार होने से लेकर खाए जाने तक, और खाने के पश्चात् गुलाबकौर के लौटने तक बातों का क्रम चलता रहा।

बीरी से विदा लेकर जब गुलाबकौर, सीढ़ियों की हवेली से बाहर निकली तो उसके सिर पर वही टोकरी, और वही गठरी बगल में थी। और 'चूड़ियां-गजरे ले लो लड़कियो' आवाजें लगाती हुई वह रेलवे स्टेशन की ओर चली जा रही थी।

२८

ज्योंही लाहौर पहुंचकर बाबाजी ने अपने चचेरे भाई से सुदर्शन के

ाचार सुने कि उनकी बची-खुची चेतना भी जवाब देने लगी। उन्हें स्तारपूर्वक बताया गया कि सुदर्शन तो उनके मकान पर केवल एक हीना ठहरा था। उसके पश्चात् वह इतना ही कहकर चला गया कि ाऊजी, दयालसिंह कालेज के होस्टल में, जहां मैं पढ़ता हूं, मेरा रहने ौर खाने का प्रबन्ध हो गया है। पिताजी की ओर से मेरी डाक आपके े पते पर आएगी।' इस कार्य के लिए वह अपने कमरे के आगे ्क छोटा-सा लेटरबाक्स लगाकर और उसे ताला लगाकर चला गया था।

बाबाजी को यह भी बताया गया कि उसके पश्चात् कुल दो या तीन बार सुदर्शन उन्हें मिलने के लिए आया था। एक बार उसने बताया कि 'बागियों के शोर के कारण बोर्डिंग के लड़कों को बाहर निकलने की मनाही कर दी गई है, इसलिए शायद मुझे आपके पास आने का अवसर न मिल सके। मेरी डाक हमारे कालेज के चौकीदार की पत्नी आकर ले जाया करेगी।' कभी-कभी एक ऊंची, लम्बी प्रौढ़ावस्था की पंजाबी स्त्री आकर लेटरबाक्स खोलकर पत्रादि ले जाती है।

भाई के घर में से निकलकर बाबाजी उलटे पांव दयालसिंह कालेज जा पहुंचे। परन्तु वहां से उन्हें उससे भी बढ़कर निराशाजनक उत्तर मिला। प्रिंसिपल ने उन्हें बताया कि इस नाम का कोई भी लड़का फर्स्ट ईयर में नहीं है।

हाथ मलते हुए और भीतर ही भीतर तिलमिलाते हुए वे कालेज के अहाते से बाहर निकले। अब क्या किया जाए, उन्होंने सोच-विचार के कई घोड़े दौड़ाए, परन्तु कुछ समझ में नहीं आ सका। अन्त में लुधियाना जाना उचित समझा, क्योंकि खान साहब ने उन्हें बताया था कि सुदर्शन लाहौर में नहीं, बल्कि लुधियाना में है। लड़के के सम्बन्ध में जितना कुछ डिप्टी कमिश्नर ने उन्हें बताया था, यदि पहले नहीं तो अब उन्हें सत्य नजर आने लगा। उन्हें दुःख था कि सुदर्शन उनके हाथों से सदा के लिए निकल गया है, और इससे भी बढ़कर वे उसकी मक्कारी पर झुंझला रहे थे। वे सोचते, 'सचमुच डी० सी० के अनुसार इस लड़के ने मुझे उल्लू बनाया है।' और साथ ही वे स्वयं पर भी दांत पीस रहे थे, 'मेरी अच्छी-भली बुद्धि पर पर्दा क्यों पड़

गया ?

उन्होंने एक और अनुमान लगाया, 'यदि सचमुच ही वह गाड़ी में मिल गया है तो वह अवश्य ही आजकल लाहौर में होगा, क्योंकि इन्हीं दिनों में प्रमुख बाग़ियों को सजाएं सुनाई गई हैं। शायद वह आता-जाता दिखाई दे जाए, या पकड़ा ही गया हो।'

उन्होंने शहर के चक्कर काटने शुरू कर दिए—कभी सेंट्रल जेल के दरवाज़े के सामने, कभी अदालतों में, कभी वकीलों के घर में कभी कहीं। और उन्होंने इतना पता लगा लिया कि बाग़ियों का मुकद्दमा कौन-सा वकील लड़ रहा है। संयोग से उनके पास रईसी चोगा तो था ही, जिसे पहनकर वे रावी रोड पर पहुंच गए, जहां लाला रघुनाथ सहाय की कोठी थी।

चोगे ने उनकी सहायता की—वकील साहब आदर से मिले, पर वकील से उन्हें सुदर्शनसिंह नाम के किसी अभियुक्त के विषय में कुछ पता नहीं मिल सका। दो-तीन दिन तक वे इसी आशा से लाहौर के होटलों, थियेटरों, बागों तथा बाज़ारों के चक्कर काटते रहे, पर व्यर्थ। अन्त में उन्होंने लुधियाना जाने का निश्चय किया। वहां जाने का कोई लाभ होगा, इसकी उन्हें चाहे आशा नहीं थी, पर 'डूबते को तिनके का सहारा'। उन्होंने अपना इरादा बदला नहीं।

लुधियाना पहुंचकर उन्हें ख्याल आया कि यहां आकर उन्होंने तो मूर्खता की है, जबकि सुदर्शन के किसी ठिकाने या उसके किसी परिचित को भी वे जानते नहीं थे। आखिर उनकी खोज करें तो कैसे? उसका पता-ठिकाना पूछें तो किससे?

दो दिन तक वे लुधियाना की सड़कें नापते रहे। पर सुदर्शन की खोज उनके लिए पड़ गए पत्तों की खोज सिद्ध हुई। उनका दिल बहुत खीझ उठा। यहां तक सोचने लगे, 'अब जीने से क्या लाभ? लड़का गया, इज्जत गई, और साथ ही भविष्य भी गया।' कहां तो वे बड़ी जागीर मिलने की आशा लगाकर बैठे थे, और कहां यह स्थिति कि भविष्य में रोटी का टुकड़ा भी मिलने की आशा नहीं दिखाई दे रही थी।

तीसरे दिन वे फिर लाहौर को गाड़ी में बैठे, और केवल इस क्षीण आशा से कि उस स्त्री, चौकीदार की पत्नी, से कुछ पता मिल सके।

जब वे लाहौर पहुंचे तो उनकी यह आशा भी लगभग टूट गई। उन्हें ख्याल आया, 'मैं कितना मूर्ख हूं ? मैं कहीं पागल तो नहीं हो गया ? वह स्त्री भी अवश्य ही बागियों की कोई सहयोगिनी होगी।' परन्तु इस बात का विश्वास होने पर भी वे टांगा पकड़कर दयालसिंह कालेज जा पहुंचे। वहां पहुंचने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि कालेज का चौकीदार तो एक गोरखा है, जबकि दाराओ के भाई ने उन्हें बताया था कि वह स्त्री पंजाबिन थी।

सप्ताह-भर जगह-जगह की खाक छानने पर भी जब लड़के के सम्बन्ध में उन्हें कोई भनक न मिली, तो अन्त में उन्होंने लौट जाने का निश्चय किया। बीरो की चिंता अलग उनके प्राण सुखा रही थी—'न जाने लड़की पर पीछे क्या गुजरी होगी ! घर में एकदम अकेली। आते समय मैंने इतना भी नहीं किया कि किसी पड़ोसी को ही कहकर आता। यदि उसे फिर दौरा पड़ गया हो...यदि दौरे की स्थिति में कुछ कर बैठी हो, छत पर से छलांग ही लगा दी हो...घर को जलाकर स्वयं भीतर ही जल मरी हो......'

संतान कितनी भी नालायक क्यों न हो, मां-बाप की आत्मा तो उससे दूर नहीं सकती। बीरो ने कागज-पत्र जलाकर चाहे पिता की नजरों में अक्षम्य अपराध किया था, पर बाबाजी को विश्वास था कि उसने यह कार्य चेतनावस्था में नहीं किया; अत. लड़की की चिंता उन्हें बराबर सता रही थी। और इससे भी बढ़कर जो भय उनके कलेजे को काट रहा था, वह था खान साहब की 'सप्ताह-भर वाली चेतावनी, जबकि सप्ताह गुजरने पर भी वे असफलता की स्थिति में लौट रहे थे। अब वे किस मुंह को लेकर खां साहब के सामने जाएंगे ? और यदि नहीं जाएंगे तो इसका परिणाम ? सिर से लेकर पांव तक उनका शरीर कांप उठता जब उनका ध्यान परिणाम की ओर जाता।

विचारों के इन्हीं घेरों में चक्कर खाते हुए हिरणपुर का टिकट लेकर वे गाड़ी में बैठे। 'इस तरह कुत्ते की मौत मरने की अपेक्षा तो आत्महत्या कहीं अच्छी है।' यात्रा करते समय बारम्बार यही विचार उनको कचोट रहा था, 'सारी उम्र की कमाई यों ही व्यर्थ चली जाएगी... पूर्वजों का नाम मिट्टी में मिल जाएगा...ब्लैक लिस्ट में नाम आ जाएगा। और यह भी कोई बड़ी बात नहीं कि हथकड़ियां लगाकर जेल में भी

पहुंचा दिया जाए। बस [illegible] ही उनके [illegible]!

फिर बाद में उन्होंने हिरनपुर की अर्जी दी, जोरों से पु-
कारने के लिए उनका सब बड़ा केंद्र था, क्योंकि वे पूरे [illegible]
दशा में छोड़कर उनसे किसी के पश्चात् लौट रहे थे—सिर्फ़ [illegible]
का समय तय नहीं किया था, पर ज्योंही गाड़ी देहरादून के
स्टेशन तराह 'दीनापसार' रुकी, हिरनपुर की ओर जाने [illegible]
के विचार से उन्होंने अपना इरादा बदल दिया।

सप्ताह-भर की यात्रा के कारण उनके कपड़े मैले और [illegible]
सिकुड़ी हुई थी। बाहर उतरकर स्नानादि करने का उन्हें ध्यान न
रहा था। इस विचारी स्थिति में किले के उनके बड़े अफसर [illegible]
करना उन्हें अपना अपमान लग रहा था। पर उन्होंने सोचा—किसका
स्वागत, किसका अपमान, जबकि सब कुछ समाप्त हो गया!

गाड़ी देहरादून के स्टेशन पर रुकी। बाबाजी वैसे ही किंकर्तव्य-
विमूढ़ होकर बैठे रहे। कभी सोचते—उतर जाऊं; कभी सोचते—नहीं
नहीं। अन्त में जब गाड़ी ने सिग्नल दी तो वे तीव्रता से उठे, सामान
उठाया और प्लेटफार्म पर उतर गए।

२९

खान साहब ने पहली दृष्टि में ही बाबाजी की स्थिति को भांप लिया। आज से एक सप्ताह पहले वाले और आज वाले इन बाबाजी में उसे सौ कोस का अन्तर दिखाई दे रहा था। उनके व्यवहार में पहले से भी अधिक कठोरता आ गई। पर आज बाबाजी को यह कठोरता उस दिन की तरह अखरी नहीं। आज वे स्वयं ही अपने-आप को 'छोटे शाहजादे' की बजाय एक घृणित-सा दोषी अनुभव कर रहे थे। जब उन्होंने अपनी असफलता की कहानी सुनानी आरम्भ की तो बोलते-बोलते उनकी आँखें भर-भर आतीं, जिनमें दया की याचना थी, और अपने निर्दोष होने का प्रदर्शन था। परन्तु खान साहब पर इसका प्रभाव बाबाजी की आशा के विपरीत ही हुआ। कानून को अलचीली वस्तु कहा जाता है, पर जब कोई दोषी किसी अफसर के सम्मुख आ खड़ा हो, तो कानून के रक्षक अलचीले से भी बढ़कर कर्कश हो जाते हैं।

"हूं।" सब कुछ सुन चुकने के पश्चात् खान साहब ने उसी भेड़ि-यों वाले स्वर में कहा, "गोया आप अपराधी को हाजिर करने के बजाय इस समय उसके विरुद्ध गवाही पेश कर रहे हैं, कि सचमुच ही लड़का बाग़ी है। पर मुझे तो इन सब बातों का पहले से ही इल्म है।"

"हुजूर !" बाबाजी गिड़गिड़ाए, "यदि मेरे वश में होता तो मैं उस नीच को पकड़कर ही नहीं, बल्कि घसीटकर आपके कदमों में ला पटकता; पर क्या करूं मेरी कोई......" और बाबाजी की आवाज भर्रा गई।

खान साहब के ढंग में अधिक नहीं तो राई जितना अन्तर अवश्य ही आ गया, "आपने अपनी ओर से पूरी कोशिश की होगी यह तो ठीक है, पर इसका क्या परिणाम होगा, शायद अभी तक आप इससे परि-चित नहीं हैं। आपके जाने के तीसरे ही दिन मुझे सी० आई० डी० की ओर से एक और रिपोर्ट मिली है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि लाहौर जाने से पहले भी, यानी घर में रहते समय भी उसके बाग़ियों से सम्बन्ध थे। जिसका मतलब साफ है कि या तो आप सब कुछ जानते हुए भी उसकी हरकतों को नजरअंदाज करते रहे हैं या मुझसे छिपा रहे हैं। इसका मतलब है कि आपने एक बाग़ी को शरण दी, आपने उसकी सहायता की, आपने उसपर पर्दा डाला। इन अपराधों के बदले में आपपर कानूनी कार्यवाही की जा सकती है। मुश्किल बात तो यह है कि ये सभी जुर्म जमानत के काबिल नहीं, जिनके सिद्ध होने पर सम्भव है कि आपको तीन से पांच साल तक की कैद और जायदाद जब्त होने की सजा मिले। आप समझदार हैं, इसके हानि-लाभ का विचार कर लें। मैं मानता हूं और सरकार को भी इस बात का एहसास है कि आपने सरकार की मदद करने में बढ़-चढ़कर भाग लिया जिससे खुश होकर हिज आनर ने आपको बहुत बड़ी जागीर देने की सिफारिश की है। पर आपकी बदकिस्मती कि लड़के ने आपकी सारी साख नष्ट कर दी।"

बाबाजी ने अर्द्ध-चेतनावस्था में ये वाक्य सुने। जब खान साहब कह चुके तो वे उखड़े हुए पेड़ की तरह यह कहते हुए खान साहब के कदमों पर गिर पड़े, "बेशक मैं कसूरवार हूं, हुजूर, कि आज तक मैं

गिरफ़्तार करवा देना। पर सवाल से ठीक नहीं है। ...
बार मेरे पीछे पड़ा है। ईश्वर के लिए माफ़ करें सरकार, मुझे ...
अब मैं क्या करूं ? मेरे खानदान का कोई भी सदस्य हुआ है जो मेरे
मेरे लिए अच्छा होगा मैं जानूं, नहीं तो मैं कहता हूं ...
मेरे दुश्मनों का साथ कुछ मैं लिए जानता...मेरी...बेटी—"
कहते-कहते बाबाजी फूट-फूटकर रो पड़े।

खान साहब बड़े विचारों में डूबे हुए थे। कुछ देर बाद काँपनेवाले लड़के से बाबाजी की ओर देखते हुए बोले, "मामला पेचीदा बन चुका है कि कुछ भी समझ में नहीं आता कि किस ढंग से आपका बचाव किया जाए। अलबत्ता एक उपाय मेरे दिमाग़ आता है जिससे आपके बचाव की आशा की जा सकती है।"

"बताइए!" बाबाजी ने रूंधी-सी आवाज़ में कहा, "आप आज्ञा सिर के बल होकर मानूंगा हुज़ूर।"

खान साहब थोड़ी देर चुप रहे, मानो मुंह से बात निकालते हुए उसे तौल रहे हों। बोले, "कर सकोगे?"

"कह चुका हूं कि सिर के बल होकर करूंगा, मारे मैं किस्मत!"

"यह तो मैं जानता हूं कि आपका मेल-मिलाप काफ़ी है।"

"हुज़ूर के कदमों की मेहरबानी से जेहलम से लेकर पेशावर तक हमारे यजमानों का फैलाव है, बल्कि काबुल तक।"

"तब तो मुझे यकीन है कि आप कुछ न कुछ कर गुज़रेंगे। अच्छा, यह बताइए कि बाग़ियों के बारे में कितनी जानकारी रखते हैं आप?"

'बाग़ियों' शब्द ने बाबाजी को एक बार फिर झकझोर दिया। उनके भय की मात्रा और बढ़ गई। बोले, "गुज़ारिश कर चुका हूं हुज़ूर, कि मैंने कभी भूलकर भी आज तक किसी बाग़ी की सूरत नहीं देखी।"

"डरो नहीं," खान साहब मुस्कराए, "मेरा मतलब कुछ और है। यानी अगर आप हिम्मत करके अपने ज़िले के किसी बाग़ी को गिरफ़्तार करवा सकें तो आपके बचाव की उम्मीद की जा सकती है। इस समय पंजाब सरकार के लिए यह एक बड़ी अहम बात है। क्योंकि

अभी तक जो डेढ़ दर्जन के लगभग बाग़ी पकड़ से बाहर हैं, उन्हें काबू में लाने के लिए सारी शक्ति लगाई जा रही है। हिज़ ऑनर गवर्नर साहब ने डिप्टी कमिश्नरों को यहां तक अधिकार दे रखे हैं कि इस काम में सहायता करनेवालों को मुंहमांगा इनाम दिया जाए। आप अगर एक भी बाग़ी को पकड़वा सकें तो मेरे लिए आपको बचा लेना मुश्किल नहीं होगा।"

सुनकर बाबाजी सोच में पड़ गए। वे अपने को इस कार्य के लिए असमर्थ पा रहे थे। आशा की जो थोड़ी-बहुत झलकें उनके चेहरे पर आई थीं, विलुप्त हो गईं। इस स्थिति को उनके चेहरे से भांपते हुए खान साहब बोले, "मायूस होने वाली ऐसी कौन-सी बात है? हिम्मत करनी चाहिए, उसका फल ख़ुदा के हाथ में है। अपने ज़िले का एक बाग़ी सरकार के लिए सिरदर्द बना हुआ है। और वह है भी सिख, जबकि आप सिखों के गुरु हैं। क्या आप इतना भी नहीं कर सकेंगे?"

अपने ज़िले का, और सिख—इन दोनों शब्दों को पाकर बाबाजी के नेत्रों के सामने एक बार फिर आशा का बिन्दु चमक उठा। उन्होंने पूछा, "कौन, हुज़ूर क्या नाम है उसका?"

"डाक्टर मथुरासिंह।"

"कहां का निवासी है वह हुज़ूर?"

"ढुडियाल का।"

"ढुडियाल का? ? ढुडियाल में तो मेरी ससुराल है हुज़ूर"

"सच?" खान साहब उछल पड़े, "फिर तो यह काम आपके लिए ज़रा भी मुश्किल नहीं होगा।"

"बहुत अच्छा हुज़ूर। अपनी ओर से सारी शक्ति लगा दूंगा, आगे जो प्रभु को भाए।"

"इन्शाअल्लाह आप सफल होंगे! आपको जिस तरह की भी सहायता की ज़रूरत होगी, सरकार की ओर से दी जाएगी। पर एक बात भूलिएगा नहीं कि अगर इस बार भी आप असफल लौटे तो फिर आपका बचाव करना मेरे बस का रोग नहीं होगा। अच्छा जाइए, ख़ुदा आपकी मदद करे।"

झुककर सलाम करने के पश्चात् बाबाजी लड़खड़ाते हुए कमरे से

बाहर निकले।

कितनी भयानक, कितनी दयनीय स्थिति होती उस व्यक्ति की सन्तान की प्राप्ति के लिए देवता की पूजा करने जाता है समय उसका प्रणाम पापों से भरा होता है!

सेंटूलन से चलकर हिरणपुर स्टेशन तक पहुंचने के बीच की जो रात थी, उसके प्रभाव से बाबा के पूर्ण हिंसा की पुनः गए। स्टेशन से निकलकर जब वे घर की ओर बढ़े तो उनका टांगों पर अधिकार नहीं था। डोरी, जिसे वे अभी तक दुधमुंही समझे बैठे थे, उनके विचार में इस हद तक मक्कार और नि निकली! इतने फरेब, इतना कपट, इस सीमा तक षड्यन्त्र! वे रहे थे—'इसी कुछ करने की नीयत से उसने इतने समय से स्वयं रोगी सिद्ध करना प्रारम्भ कर रखा था—मुझे दौरे आते हैं, मुझे तकलीफ है, मुझे वह तकलीफ है। क्या यह सारा नाटक उ नाटक चलाने के लिए रचा था? ऐसी पितृद्रोही सन्तान की अपेक्षा मैं निस्सन्तान व्यक्ति अधिक सुखी रहता है।'

वैसे तो इस समय बाबाजी अन्य कई प्रकार के मानसिक कष्टों से भी पीड़ित थे, पर स्टेशन से चलकर घर पहुंचने तक डोरी को उसके कुकर्मों की सजा देने के अतिरिक्त अन्य कोई विचार उनके मस्तिष्क में नहीं था। उनकी दृष्टि में सभी कष्टों की जड़ यही लड़की थी। वे उसे घर पहुंचकर टुकड़े-टुकड़े कर देना चाह रहे थे, चाहे इसके बदले में उन्हें फांसी पर ही लटकना पड़े।

वे जितने कदम घर की ओर चल रहे थे, उतने ही प्रकार के, डोरी को विश्वासघात का दंड देने के विषय में, अलग-अलग विचार उनके मन में पैदा होते रहे। घर के निकट पहुंचकर तो उनकी दशा पागलों जैसी हो उठी। प्रत्येक सोची-विचारी बात साथ ही साथ उन्हें भूलती जाती, हर भूली हुई बात उनके मस्तिष्क में उभरती जाती। किस कार्य का कैसा परिणाम हो सकता है—इस प्रकार की उनमें चेतना शेष नहीं बची थी। उनके अन्तर में अनेक बातें उभरती चली आ रही थीं—हे प्रभु, मेरी बुद्धि पर पर्दा क्यों पड़ गया है? मैं उस दिन ही क्यों उस नीच लड़की के इरादों को नहीं समझ सका, जब मैंने उसे बागियों की एक कविता पढ़ते हुए

देखा था ? मुझे उसी समय क्रोध क्यों नहीं आई जब किसी बाग़ी का दंत या भर्ती आदि की कोई बात सुनकर उंगलियां मरोड़ने लगती और उसके चेहरे का रंग बिगड़ जाता था…?

बाबाजी की दृष्टि में चाहे दोनों भाई-बहन अपराधी थे—बल्कि सुदर्शन को वे डोरी से भी अधिक दोषी समझते थे, पर इस समय तो डोरी के अतिरिक्त अन्य कुछ सोचने का उनके पास समय ही नहीं था। सीढ़ियों की हवेली दिखाई दी और फिर उन्होंने स्वयं को भीतर प्रविष्ट होते हुए अनुभव किया। डोरी आंगन में नहीं थी। वे यह सोचकर चलते रहे की तरह वैसे ही सीढ़ियां चढ़ने गए। परन्तु ऊपर पहुंचने पर भी उन्हें कहीं डोरी दिखाई नहीं दी।

'तो नीचे ही दरवाज़ा बन्द किए भीतर बैठी होगी।' यह सोचकर वे फिर सीढ़ियां उतरने लगे। अभी आधी सीढ़ियां ही उतरे थे कि 'पिताजी, मा…।' कहती हुई डोरी उन्हें दिखाई। दोनों का मिलन सीढ़ियों में हुआ। डोरी के मुंह में अभी आधा वाक्य था कि बाबाजी की दोनों भुजाओं ने बलपूर्वक उसपर प्रहार किया और डोरी का शरीर गेंद की तरह सीढ़ियों में लुढ़कता हुआ निचले दरवाज़े की चौखट में आ पड़ा।

३०

क्रोध को 'चाण्डाल' कहा जाता है, परन्तु वास्तव में चाण्डाल से बढ़कर भी इसका प्रभाव कहीं अधिक भयावह होता है। इस स्थिति में व्यक्ति इतना बेहोश हो जाता है कि उसे भूत, वर्तमान तथा भविष्य, तीनों का ही अहसास नहीं रहता। चाण्डाल के अतिरिक्त इस मनोविकार को 'विष' की उपमा भी दी जाती है। पर वास्तविक विष से इसका प्रभाव अधिक भयावह होता है, जिसके विषय में किसी कवि ने ठीक ही कहा है—'कालकूट और क्रोध को, बड़ो अन्तरो आहि। क्रोध निजाश्रय को दहै विष नहीं स्वाश्रय दाहि।' अर्थात् विष तथा क्रोध में बड़ा अन्तर यही है कि विष जिस बर्तन में पड़ा होगा, वह उसे जलाएगा नहीं। पर क्रोध का विष अपने बर्तन (मन तथा शरीर) में होगा उसे भी जला देता है।

[illegible]

[illegible]

उसकी बीवी के शरीर पर [illegible] तो पिता के [illegible] पुत्र की [illegible] और भी बढ़ गई। वह उनके पिता की [illegible] स्थिति देख रही थी, जो एक समय यदि [illegible] रहा होगा, तो इसी समय वही उसे फिर [illegible] हुआ दिखाई देता। जिसे देखकर बीवी के मन को [illegible] छिन्न-भिन्न हो जाती। परन्तु उसके कुछ ही समय पश्चात् फिर वही [illegible] और [illegible] आरम्भ हो जाता।

[illegible] परेशानियों का प्रधान [illegible] के मस्तिष्क में [illegible] रहता। उसकी [illegible] और [illegible], ये दोनों [illegible] की ओर [illegible] हुई दिखाई देतीं। न जाने किस समय ये दोनों समाप्त हो जाएँ। इसी मन

ि वे हर समय घुलते चले जा रहे थे इसलिए उनका स्वास्थ्य एक सप्ताह में ही बहुत गिर गया।

भाग्य का कितना अनोखा मजाक था ! घर के दोनों सदस्य रोगी। एक शारीरिक रूप से छटपटा रहा था, दूसरा मानसिक रूप से। बही दो समय का खाना भेजने के अतिरिक्त पड़ोसियों ने वैसे ही लगभग सम्बन्ध तोड़ दिए थे। जब बाबाजी घबरा उठते तो हाथ उठाकर पुकारने लगते—'हे प्रभु अब मुझे इस धरती से उठा लो!' पर धरती से उठा लेना शायद प्रभु को स्वीकार नहीं था। अचानक ही एक ऐसी घटना घटी—प्रकृति का कोई गुप्त हाथ ऐसे अनोखे ढंग से आगे बढ़ा—जिसने चाहे अस्थायी रूप से ही सही, बाबाजी की परेशानियों को कुछ न कुछ कम कर दिया।

३१

बाबाजी इन दिनों लगभग सारा ही दिन, एकाध बार बाजार का चक्कर लगाने के अतिरिक्त, अपने दुमंजिले में पड़े रहते थे। उनकी दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ती चली जा रही थी। मानसिक अवस्था बिगड़ी हो तो शरीर पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। वे सारी रात जागकर काट देते। भूख उन्हें जरा भी नहीं लगती। मृत्यु उतनी भयानक नहीं होती जितनी आदमी की वह स्थिति, जब वह मृत्यु एवं जीवन के मध्य लटक रहा हो। बाबाजी आजकल इसी स्थिति में से गुजर रहे थे।

इतनी बोझिल घड़ियाँ गुजारते हुए उन्होंने आठ-दस दिन तो जैसे-तैसे घर में रहकर काटे, पर इससे आगे जब यह कष्टदायक समय काटना उनके लिए असंभव हो गया, तो उन्होंने मन में दृढ़ संकल्प कर लिया कि एक बार अवश्य ही उन्हें अपने जिम्मे लिए गए कार्य को पूरा करने का प्रयत्न करना पड़ेगा—सफलता मिले या न मिले। धीरी की बीमारी या उसके एकाकीपन की चिंता, जिसने अभी तक उनके कदमों को बांध रखा था, बाबाजी की सोची हुई इस युक्ति ने कम कर दी कि उन्हें दुड़ियाल तो जाना ही है। निकटवर्ती गांव मिणवाल में जाकर धीरी के मामा को क्यों न यहां भेज दें, जो तब तक धीरी के दृ-

रहता। कई बार बाबाजी स्वयं महसूस करते कि यह कैसी घृणा जो प्रतिदिन उनपर सवार होती जा रही है। बीरी के साथ पड़ोसियों किए गए दुर्व्यवहार के पश्चात् उन्हें घोर पश्चात्ताप होता। स्वयं प इतनी झुंझलाहट होती कि कई बार 'कहर दरवेश, बरजान दरवेश' वाली स्थिति के अनुसार अपने-आपको थप्पड़ मारने और सिर के बाल नोचने तक की नौबत आ जाती। दिन और रात में कई बार उनकी स्थिति बदलती रहती। कभी-कभी तो इसमें इतनी गड़बड़ पैदा हो जाती कि जो जी में आता कर गुज़रते, जो मुंह में आता कह जाते। पर किसी समय मस्तिष्क की मशीन ठीक ढंग से भी चलने लगती। और ठीक चलने में उनकी स्थिति और भी बिगड़ने लगती। उन्हें वे सारी बातें तथा क्रियाएं रुलाने लगतीं, जो वे कर गुज़रे होते। पश्चात्ताप का तूफान कई बार यहां तक प्रबल हो उठता कि वे झट से छत से उतरकर बीरी के कमरे की ओर क्षमा-याचना के लिए चल पड़ते। परन्तु बाहर से ही लौट आते।

इसमें कोई संदेह नहीं कि एक लम्बे समय से बीरी को अपने पिता के आचरण से घृणा थी। परन्तु अब वह और भी उभर आई जब गुलाबकौर द्वारा उसे पता लगा कि बाप अपने बेटे को गिरफ्तार करवाने के लिए एवं इस बहादुरी के बदले में सरकार द्वारा बहुत बड़ा पुरस्कार प्राप्त करने के लिए भाग दौड़ कर रहा है। यह सुनते ही बीरी इस पर उतारू हो गई थी कि ज्योंही उसका पिता लौटेगा, वह उसे आड़े हाथों लेगी। परन्तु आड़े हाथों लेनेवाली क्रिया जब उलटी बीरी के शरीर पर व्यवहार से लाई गई तो पिता के प्रति घृणा की मात्रा और भी बढ़ गई। वह अपने पिता की कितनी दयनीय स्थिति देख रही थी, जो एक समय यदि पूर्ण अत्याचारी ढंग से उसे सता रहा होता, तो दूसरे समय वही उसे सिर धुनता हुआ दिखाई देता! जिसे देखकर बीरी के मन की घृणा छिन्न-भिन्न हो जाती। परन्तु उसके कुछ ही समय पश्चात् फिर वही कसाई और बकरी वाला नाटक आरम्भ हो जाता।

अगणित परेशानियों का तूफान बाबाजी के मस्तिष्क में उठता रहता। अपनी जिन्दगी और इज्जत, ये दोनों खतरे की ओर लुढ़कती हुई दिखाई देतीं। न जाने किस समय ये दोनों समाप्त हो जाएं। इसी भय

देगा जब तक वे लौटकर नहीं आते।

इस विचार से इनकी इस उलझन का हल तो हो गया। परन्तु उनके लिए एक और उलझन भी शेष थी। वह थी घर की आर्थिक अवस्था। आय का साधन चाहे नाम-मात्र ही था—पूजा-भेंट का—परन्तु वह भी काफी समय से बन्द था। दूसरा जो छोटा-सा साधन था, वह था—स्त्रियों से कुछ पूजा करने का, जो झाड़-मंत्र के लिए आई हुई कुछ न कुछ भेंट चढ़ाया करती थीं। परन्तु पिछले कुछ समय से—जब से बाबाजी ने उनसे दुर्व्यवहार करना आरम्भ किया—वे भी आने से हट गई थी। फिर घर में बीमारी, डाक्टर और दवाई ने भी बोझ डाल दिया था। बाहर जाने का कार्यक्रम लम्बा है जिसके लिए किराये आदि की भी आवश्यकता थी। साथ ही उतने समय के लिए घर में भी तो राशन इत्यादि का प्रबन्ध होना चाहिए। यदि अपने साले को वे घर में निमंत्रित करने का विचार बना बैठे थे, तो क्या घर की नग्नता दिखलाने के लिए? उन्होंने चारों ओर दृष्टि घुमाई। परन्तु कहीं से भी उन्हें कुछ आशा की झलक दिखाई न दी। यदि आज उनके पास गहने होते तो उनसे ही काम बन जाता। परन्तु वे तो रानाओं की भेंट हो चुके थे। उधार मिलने की आशा थी ही—इतने बड़े घराने का मालिक यदि किसीके सम्मुख हाथ फैलाए तो रिक्त हाथों से नहीं लौटेगा। परन्तु पहले से ही वे वह बोझ उठाए बैठे थे, जिसे उतारने के बजाय और लादते जाना, यह बात उन्हें व्यर्थ-सी लगती थी। यदि कल को लेनदारों ने चक्कर काटने आरम्भ कर दिए, फिर क्या होगा? देखने-सुनने वाले कहेंगे—सोढ़ी साहबजादे की यह स्थिति?

'क्यों न डी॰ सी॰ से ही जाकर कुछ सहायता मांगी जाए? वह जो कहता था कि इस कार्य के लिए जितनी भी सहायता की आवश्यकता पड़े, वह देने के लिए तत्पर है।' यह विचार बाबाजी के मन को पहले तो जचा, परन्तु यह सोचकर त्याग देना पड़ा—'क्या मैं इस स्थिति में हूं कि उनसे जाकर सहायता मांगू? साथ ही इसकी भी तो आशा नहीं कि मांगने पर भी वे मुझे नोटों का बंडल निकालकर पकड़ा देंगे। अलबत्ता यदि मैं मथुरासिंह को पकड़वा दूं या कम से कम उसका कोई सुराग ही निकाल सकूं, तो उसके पश्चात् चाहे कुछ प्राप्त हो

दायित्व दयाला पर आ पड़ा, तो वह पूरी सावधानी से काम करे। वास्तव में घर की स्थिति एक लम्बे समय से बिगड़ी हुई थी। जब से बीरी ने चारपाई पकड़ी, उसकी दशा और भी बुरी हो गई। बीरी भी तो बड़ी कठिनाई से आवश्यकतानुसार स्थान को ही संवार सकती थी। इतनी बड़ी हवेली की देखभाल किसी एक व्यक्ति द्वारा किया जाना कोई सरल कार्य न था। परन्तु दयाला आगमन से घर के किसी न किसी वीरान स्थान का प्रतिदिन काया होने लगा। हवेली का विशाल आगन या तो ईंट-पत्थरों से भरा प था या घास-फूस से। दयाला सूरज निकलने से लेकर सूर्यास्त तक कुछ न कुछ करता ही दिखाई देता। उसके समय का अधिकांश भाग की सफाई करने में तथा उसका सौंदर्य बढ़ाने में गुजर जाता। बीरी ने कभी सोचा था कि जिस ठिगने और श्यामवर्ण युवक को देखकर पहले दिन वह उसकी हंसी हंसी थी, वही व्यक्ति इतनी शीघ्रता से बेजान घर में प्राण फूंक देगा?

बीरी के घाव तो भर चुके थे परन्तु बाह की हड्डी जुड़ने में डाक्टर के कथनानुसार अभी कुछ दिन लगने थे। शायद इतना समय चारपाई पर पड़े रहना उसके लिए दूभर हो जाता, परन्तु साथ ही उसे जो बुखार की शिकायत होने लगी उसकी दुर्बलता ने तो उसे उठने योग्य ही नहीं छोड़ा। चारपाई पर लेटकर या ढासना लगाकर बैठी हुई बीरी ध्यानपूर्वक उस परिश्रमी युवक की क्रियाओं को निहारती रहती, जो दिन के चार प्रहरों में उसे किसी भी समय खाली दिखाई नहीं देता था। कभी उसके हाथ में सफाई करने वाला कपड़ा, कभी झाड़ू, कभी खुरपी और कभी बसूला होता। यदि दयाला के बदले वह किसी अन्य को इतना परिश्रम करते हुए देखती तो अवश्य ही उसे उसपर दया हो आती। परन्तु यह दयाला? यह तो काम करता हुआ इतने चाव में—इतने उत्साह तथा प्रसन्नता में उसे दिखाई देता मानो वह किसी खान में से हीरे-मोती चुन रहा हो—जो उसकी जायदाद हों।

दयाला को दिन में कई-कई चक्कर डाक्टर की ओर काटने पड़ते—कभी हरारत बढ़ जाने के कारण, तो कभी पीड़ा उत्पन्न होने से। जितनी बार भी दयाला की नजर बीरी पर पड़ती या जितनी बार भी बीरी से बातचीत करने का उसे अवसर हाथ आता, वह इतनी श्रद्धा,

ममता तथा सेवा की मूर्ति दिखाई देता, मानो कोई पुजारी किसी देवी की पूजा कर रहा हो।

बीरी को वह 'देवी जी' कहकर सम्बोधन करता था। शिष्य-सेवकों की यही प्रथा चली आई थी : गुरु की पत्नी को 'माताजी', पुत्र को 'टिक्का साहब' और लड़की को 'देवीजी' कहकर बुलाया जाना।

जैसे-जैसे दिन गुजरते गए, बीरी के मन में दयाला के प्रति आदर बढ़ता चला गया। इसके चाहे अनेक कारण थे, परन्तु सबसे बड़ा तो बीरी के प्रति दयाला का श्रद्धा-भाव था। वह इस बात का अनुभव करती कि दयाला किस प्रकार उसके आदेश पाने के लिए तत्पर रहता है। ज्योंही वह किसी कार्यवश उसे पुकारती कि दयाला, चाहे कुछ भी कर रहा हो, काम छोड़कर और दौड़कर आता। हाथ जोड़कर दृष्टि झुकाए खड़ा हो जाता। यहां तक कि कई बार बीरी केवल यह सोचकर कि इससे दयाला के दिल को अत्यधिक प्रसन्नता मिलती है—उसे बिना मतलब के ही आवाज देकर बुला लिया करती और फिर कोई साधारण-सा काम करने के लिए कह देती, जिसे सुनते ही वह फूला न समाता।

बाबाजी को घर से गए दस दिन गुजर गए थे। इस बार वे जाते हुए बीरी को कुछ भी बताकर नहीं गए थे कि किस ओर दौरा करने जा रहे हैं और कब लौटेंगे। परन्तु दयाला को इतना कह गए थे कि शायद एक सप्ताह-भर लग जाए।

आज बीरी को अपना स्वास्थ्य अच्छा प्रतीत हो रहा था। टांग को हिलाने-डुलाने से कोई कष्ट नहीं होता था। बुखार भी नाममात्र को ही था। घाव उसके भर चुके थे।

दयाला इस समय रसोईघर में था। बीरी ने आवाज दी, "दयाला, दयाला!" दयाला मानो उड़कर आ पहुंचा। "आज्ञा कीजिए देवीजी।"

"मुझे जरा आंगन तक ले चलो।" बीरी ने कहा, "पहले जाकर धूप में चारपाई बिछा आओ। बहुत समय से धूप नहीं तापी है।" बिजली के वेग से दयाला बाहर चारपाई डालकर बिछावन कर आया और फिर कंधे का आश्रय देते हुए वह बीरी को बाहर तक ले गया। ज्योंही बीरी ने बाहर निकलकर

[illegible] ही नहीं। [illegible]
[illegible]

उसे आरामकुर्सी पर बैठाकर दयाला फिर अपने [illegible] में [illegible] फिर चुपचाप हुई, और वह फिर खड़ा रहा।

"दयाला," मीरी ने [illegible] मुस्कराहट से उसे कहा, "कुछ लिखने लाये हो?"

दयाला बचपन के इस बोल से [illegible] अनुभव कर, फिर [illegible] बोला, "मैंने तो कुछ भी नहीं लिखा है देवीजी। दुनिया में [illegible] है या देवीजी न।"

"इधर आओ।"

दयाला सकुचाता हुआ एक कदम आगे बढ़ा।

"और आगे आओ।"

एक कदम वह और बढ़कर आरामकुर्सी की पाटी के निकट आ खड़ा हुआ। मीरी ने हाथ बढ़ाते हुए उसका कंधा थपथपाकर कहा, "शाबाश!" इन तीन अक्षरों वाले शब्द को दयाला ने वास्तविक वरदान के रूप में ग्रहण किया। उसे अपने गुरु की कही एक पुरानी भविष्यवाणी अभी तक याद थी—'दयाला, समय आने वाला है जब तुम दयाला से 'देवीदयाल' बन जाओगे।' आज उसे प्रत्यक्ष रूप से गुरु की कही भविष्यवाणी साकार दिखाई दी। सचमुच ही वह इस समय दयाला से बदलकर 'देवीदयाल' अनुभव कर रहा था—साक्षात् उसे अपने ऊपर 'देवी' दयालु हुई अनुभव हो रही थी।

इस वरदान को पाकर दयाला का माथा मीरी के कदमों पर जा टिका, और मीरी ने उसके सिर और पीठ को सहलाते हुए उसे अपने पैरों पर से उठाया।

बाबाजी के इस बार के दौरे ने पिछला रिकार्ड तोड़ दिया।

बीरी चाहे शारीरिक रूप से स्वस्थ हो चुकी थी, परन्तु यह स्वास्थ्य उसके लिए किसी असाध्य रोग से कम नहीं था, जबकि उसके मन को अनेक प्रकार के भय हर समय दीमक की तरह खाते रहते थे। उसने गुलाबकौर से जो वायदा किया था—शीघ्रातिशीघ्र पहुंचने का—उस वादे को इतना समय व्यतीत होने पर भी बीरी अभी तक पूरा नहीं कर सकी। पहले तो बीमारी के कारण विवश थी और अब उसका स्वास्थ्य सुधरा तो आने वाला मामला और भी उलझ गया। गुलाबकौर ने अपना जो पता लिखाया था उसी पते पर बीरी ने कई पत्र लिखे परन्तु उसे किसीका भी कोई उत्तर नहीं मिला। पत्रों के विषय में उसे गुलाबकौर अपने विशेष ढंग बता गई थी। फिर उसे एक ऐसा समाचार मिला कि उसके लिए पत्र लिखने का प्रश्न ही समाप्त हो गया।

युद्धकाल में समाचारपत्रों का विक्रय खूब जोरों पर था। हर किसीको युद्ध के समाचार पढने में रुचि थी। लोगों की प्रतिदिन बढ़ती मांग के फलस्वरूप हर कस्बे में समाचारपत्रों के विक्रेता पैदा हो गए। हिरणपुर में भी इस तरह का एक आदमी कई दैनिक पत्रों का अभिकर्ता था। बीरी ने यह काम दयाला के सुपुर्द कर रखा था कि सुबह होते ही वह आकर एक समाचारपत्र खरीद लाया करे।

इसी पत्रिका के एक अंक में एक दिन क्रांतिकारियों की स्त्री-कार्यकर्ता गुलाबकौर की गिरफ्तारी का समाचार पढ़कर बीरी के दिल को और भी धक्का लगा; और उससे कुछ दिनों के पश्चात् उसने जब गुन्चासिंह की गिरफ्तारी का समाचार पढ़ा, तो उसे विश्वास हो गया कि सुदर्शन भी पकड़ा जाएगा। वह जानती थी कि सुदर्शन उसी गुन्चासिंह की पार्टी में काम कर रहा है।

बीरी को जो कष्ट किसी करवट भी चैन नहीं लेने दे रहा था, वह था, करतारसिंह सराभा के विषय में, जिसे मृत्युदंड सुनाए लगभग दो महीने का समय हो चुका था; और बीरी को यही भय लगा रहता था कि न जाने उसे कब फांसी लग जाए। एक बार उसे देखने की लालसा बीरी को हर समय तड़पाती रहती। परन्तु यह काम उसके लिए

[illegible]

दयामा स्वयं को सौभाग्य के शिखर पर अनुभव करने लगा। परन्तु इतना होने पर भी कभी-कभी उसका मन उदास हो उठता जब उसकी नज़र दीदी की आकृति की गहराई को पार कर, उसके हृदय तक जा पहुँचती। आखिर क्या कारण है कि वह देवी, देवी होते हुए भी हर समय किसी आत्मदाह की तपन से झुलसती रहती है? सर्वशक्तिमान देवी—जो दयामा जैसे मूर्ख को महान बनाने की शक्ति रखती है—अपने को क्यों नहीं बचा सकती? उसकी आत्मा को

विकसित नहीं कर सकती? और एक दिन जब दयाला को इस जिज्ञासा ने बहुत ही आतुर कर दिया तो इतना बड़ा प्रश्न उसके छोटे-से मुख में से निकल ही पड़ा।

दोपहर के समय बीरो, अपनी लाल रंग की कश्मीरी शाल—जो उसके पिता ने गतवर्ष उसके लिए खरीदी थी—ओढ़कर आंगन में धूप ताप रही थी। दयाला की लगाई हुई सब्ज़ी-भाजियों को विशेषरूप से मटरों को फूल लगने आरम्भ हो गए थे। मूली और शलजम की पत्तियां भी बड़ी हो रही थीं। बीरो के ध्यान को इस समय वनस्पति के इस सुहावने दृश्य ने आकर्षित कर रखा था, उसकी ओर वह ध्यान से देख रही थी, इतने ध्यान से कि उसकी पलकें हिलना भी भूल गई थीं। थोड़े समय के पश्चात् जब ये पलकें हिलीं तो साथ ही उनमें से दो बूंदें निकलकर उसके गालों पर फिसल आईं। बीरो ने एक लम्बी आह भरी। उसकी दृष्टि क्यारियों से हटी। तभी उसने चारपाई के निकट दयाला को देखा, जिसके हाथ जुड़े हुए और सिर झुका हुआ था। उसने जब तनिक ध्यान से देखा तो दयाला की आंखों को भी उसे वही दशा दिखाई दी, जैसी उसकी अपनी थी।

"देवीदयाल!" गहरी भावुकता से उसने पुकारा, "क्यों, क्या बात है?"

"देवीजी की किरपा है जी।" दयाला ने ज़मीन पर बैठते हुए उत्तर दिया।

"आंखें क्यों भरी हैं?"

"कोई बात नहीं, देवीजी।"

दयाला के मन में क्या है? इस घर और साथ ही घर के सदस्यों के विषय में वास्तविकता जानने-समझने के लिए दयाला कितना उत्सुक रहता है, बीरो क्या दयाला के मन को पढ़ न सकी होगी? इस समय विशेष रूप से दयाला किन अनुभूतियों से प्रेरित होकर उसके निकट चला आया है, यह भी लगभग उससे छिपा नहीं रहा।

"यहां खाट पर बैठ जाओ।" बीरो ने उसे कहा। परन्तु दयाला टस से मस नहीं हुआ। गुरु-कन्या ही नहीं बल्कि साक्षात्कार देवीजी की ही इतनी कड़ी आज्ञा! यह तो उसके लिए धार्मिक पंथ पर पांव रखने से भी बढ़कर अपराध था। अन्त- ने उसे वैसे ही बठे

[illegible]

[illegible]

[illegible]

बीबी ने एक बहुत [illegible] किया—

"हिन्दुस्तानियो ! रखना याद बापू,
जिसे [illegible] को ना भुला जाता।
[illegible]
बापू जैसे नहीं [illegible] जाता।
[illegible]
[illegible]
हिन्दवासियो ! [illegible] बापू,
जिसे [illegible] ना [illegible] जाता।
[illegible]
[illegible] ना [illegible] जाता।
मूर्ति, कृपाल, नवाब बापू,
अमरसिंह ना जिसे कहा जाता।
[illegible]
[illegible] जाता।
[illegible] पास [illegible]

वतनवासियो ! दिल न डा जाणा ।
प्यारे वीरनो ! चले हाँ असी जित्थे,
एसे रसतयों सुसीं वी आ जाणा ।"

(हिन्दवासियो ! हमें स्मरण रखना, अपने दिलों से भुला न देना। हम देश के लिए फांसी पर चढ़ रहे हैं, यह देखकर घबरा मत जाना। हमारी मृत्यु देशवासियों के मन में देश-प्रेम को जगा देगी ! देशवासियो ! सदा चांद की तरह चमकना, कभी भी बादलों के नीचे न आ जाना। देश से द्रोह करके राष्ट्र के मस्तक पर कलंक न लगाना। मूलासिंह, कृपालसिंह, नवाबखां और अमरसिंह जैसे गद्दार मत कहलाना। बन्दीगृह देश-सेवकों के कालेज हैं, इनमें प्रवेश लेकर डिग्री प्राप्त करना। इस कालेज में अधिक फेल होते हैं, कम पास होते हैं। देशवासियो ! निराश मत होना। प्यारे भाइयो ! हम जहां जा रहे हैं इसी मार्ग से तुम भी वहां पहुंचना।)

कविता पढ़ चुकने के पश्चात् वीरी ने अखबार पकड़ा, जिसका पहला शीर्षक था—'क्रांतिकारियों के दण्ड के विषय में वाइसराय का अन्तिम निर्णय।'

पत्रिका वीरी के हाथों में कांपने लगी, परन्तु उसने उसे तब तक नहीं छोड़ा जब तक उसने उसे नीचे दी गई सारी खबर पढ़ न ली—

"लाहौर, १२ नवम्बर—लाहौर कौंसपिरेसी केस के मृत्युदंड पाए हुए अभियुक्तों की वाइसराय की ओर से की जा रही निगरानी का निर्णय इस तरह हुआ—२४ दोषियों में से १७ का दंड मृत्यु से काले पानी में बदल दिया गया। शेष ७ का मृत्युदण्ड पूर्ववत् रहा। जिनके नाम ये हैं—

१. कर्तारसिंह सराभा गांव (लुधियाना)
२. बख्शीशसिंह गांव गिलवाली (अमृतसर)
३. विष्णु गणेश पिंगले अटे गुआ गांव (पूना)
४. जगतसिंह गांव सुरसिंह (लाहौर)
५. हरनामसिंह गांव भाई गुराया (सियालकोट)
६. सुरैनसिंह नम्बर १ गांव गिलवाली (
७. सुरैनसिंह नम्बर २ गांव गिलवाली।

इन सातों को दो-तीन दिन के

[illegible]

३४

[illegible]

जेल के नियमानुसार मृत्युदण्ड प्राप्त अभियुक्तों को कोई और दण्ड नहीं दिया जा सकता। हाँ, उनपर इस तरह की निगरानी रखी जाती है कि कोई अपराध न कर सकें। उन्हें शारीरिक श्रम नहीं दिया जाता, न ही उनसे कोई बुरा व्यवहार ही किया जाता है। इस प्रकार के अभियुक्त स्वाभाविक तौर से उद्दण्ड, निडर हो जाते हैं। शायद यही सोचकर कि मृत्यु से बढ़कर उन्हें और कोई क्या दण्ड देगा। इसलिए जेल के कर्मचारी, जहाँतक हो सके, उन्हें शिकायत का अवसर नहीं देते, और नम्र व्यवहार करते हैं।

इन अभियुक्तों के भय से तो उलटा जेल-कर्मचारी ही कांपते थे। अपनी-अपनी कोठरियों में तो इनके मन में आए करते रहें—और

कोठरी में खड़ा रहता है, मुलाकाती बाहर । कोठरी की छड़ें इतनी घनी होती हैं कि कठिनाई से हाथ बाहर निकल सकता है।

इस मुलाकात के लिए एक सुविधा भी दी जाती है और यह कि जरा अधिक समय मिलता है, जो अधिक से अधिक एक घंटे का सकता है, परन्तु केवल तभी जब स्थिति ठीक रहे। यदि किसी प्र विषय में खतरे के लक्षण दिखाई पड़ें, तो समय से पूर्व ही मुलाकाति को हटा दिया जाता है। पर इन बातों के बारे में ऐसा भय नहीं था।

गवाहों की बदली के पश्चात् फांसी वाले सातों कैदियों को एक अन्य वार्ड में ले जाकर बन्द कर दिया गया, जिनकी कोठरियां एक दूसरी से फासले पर थीं।

मुलाकातों की तारीख एक दिन और बढ़ा दी गई थी। दोनों दिन मुलाकातियों का तांता बंधा रहा। उधर, दोनों दारोगा तथा अन्य सिपाही चक्कर काटते रहे। क्रांतिकारी कैदियों द्वारा कोई किसी दुर्घटना का भय नहीं था, परन्तु मुलाकातियों के विषय में तो था ही। खतरा हो चाहे न हो, उन लोगों को अपनी नियमावली पर चलना ही होता है।

चाहे कोई कितने ही दृढ़ हृदय वाला हो, पर आखिर है तो वह हाड़-मांस का ही पुतला। क्रांतिकारी सही, मृत्यु को मज़ाक समझने वाले सही, पर उनके हृदय भी तो मोह से शून्य नहीं हो सकते कि उनमें अपने प्रियों से मिलने की इस समय इच्छा नहीं उठती होगी, जबकि वे इस संसार से सदा के लिए विदा ले रहे हों। मानना पड़ेगा कि इन सातों मौत से खेलने वालों को भी अपने-अपने संबंधियों के अंतिम दर्शन करने की अभिलाषा थी, परन्तु इनमें एक कैदी ऐसा भी था जिसके चेहरे पर ऐसे किसी भी मनोविकार का कोई लक्षण ढूंढ़े नहीं मिलता था—जो किसी भी मुलाकाती की प्रतीक्षा में बेकरार नहीं था। जब वकीलों ने उससे पूछा, "बताइए सराभा जी, आप किस मुलाकाती को बुलाना चाहते हैं ?" तब उसने बेपरवाही की अपनी स्वाभाविक हंसी से उत्तर दिया था, "मुझे किसी मुलाकाती को नहीं बुलाना है।"

सराभा आज सुबह से ही पूरी मस्ती में, सलाखों के पीछे खड़ा दिन-भर आज़ादी के गीत गाता रहा था। पर इन तरानों में किसी अन्य ने उनका साथ नहीं दिया। एक तो कोठरियां ही एक-दूसरे से

पैठने नहीं देता था," कहते हुए बीरी ने अपने ठिठुरे हुए दोनों
सलाखों के अन्दर सरकाकर सरामा की मुट्ठियों पर—जो सलाखों
लिपटी हुई थीं—टिका दिए।

कुछ तो बीरी के शब्दों ने और कुछ उसके स्पर्श ने, दोनों ने मि
कर सरामा के समस्त शरीर में एक धीमा-सा स्पन्दन छेड़ दिया। उ
चाहा कि वह सलाखों को छोड़कर बीरी के ठिठुरे हाथों को अपने हा
में लपेट ले।

एकदम अनहोने और अकल्पित इस दृश्य को देखकर वह भौंचक्का-
सा रह गया। अभी तक भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि वह जो
कुछ यह देख रहा है स्वप्न के सिवा कुछ और है। उसकी आँखें बीरी
पर कुछ ऐसी गड़-सी गई थीं, मानो उनकी पुतलियों को किसी ने दबा
दिया हो।

"तुम···तुम···रघुबीर···तुम···" यत्न करने पर भी जब उससे पूरा वाक्य नहीं निकल पाया तो बीरी ने उसकी मुट्ठियों को सहलाते हुए कहा "आप घबरा क्यों गए, मैं सचमुच ही रघुबीर हूं। और आपसे मिलने आई हूं। आपने ही तो बुला भेजा था।"

सरामा को स्मरण हो आया कि इससे पहले भी बीरी ऐसा ही कुछ कह चुकी है, जिसका मतलब था कि उसीने उसे बुला भेजा है। बीरी के चेहरे की ओर देखता हुआ, आश्चर्य से डूबा वह बोला, "मैंने तो किसी भी मुलाकाती को तार नहीं दिलवाया था।" जब उसने ध्यान से बाहर देखा तो बीरी अकेली थी। शायद सिपाही और वार्डर बरामदे से बाहर चले गए थे।

बाहर की लैम्प-पोस्ट के प्रकाश में सरामा ने और भी अच्छी तरह दृष्टि गड़ाकर देखा। सलाखों से सटी हुई बीरी कह रही थी, "झूठ बोल रहे हैं? क्या आपने संदेशा नहीं भेजा था?"

'नहीं' में उत्तर देने से शायद बीरी अपना निरादर समझे, वह बोला, "यदि···यदि उस छपे हुए कागज को तुम 'संदेशा' समझती हो तो···तो शायद तुम्हारा अन्दाजा ठीक ही है। मैंने किसी साथी द्वारा कहला भेजा था कि 'संग्राम' जब भी प्रकाशित हो, उसकी एक प्रति अमुक पते पर भी भेजी जाए।"

"पर तुम्हें मुलाकात की आज्ञा कैसे मिल गई, रघुबीर?"

"मुझे पता था," वह बोली, "कि किसी गैर को आज्ञा नहीं मिल सकती।"

"यही तो मैं पूछता हूं कि फिर तुम्हें कैसे मिल गई?"

"मुझे? मैं जेलर की कोठी चली गई थी। मुलाकातों का समय समाप्त हो चुका होगा, यह मुझे पता था।"

"फिर जेलर ने तुम्हें कैसे आज्ञा दे दी?"

"मैंने उसे बताया कि सराभाजी मेरे पति हैं।"

"हैं!"

"जी हां।"

"यह तो तुमने अजीब पाखंड किया, रघुबीर!"

"पाखंड किया या जो कुछ भी किया, आप इस बात को छोड़िए। कोई मतलब की बात कीजिए।"

दो मिनट की खामोशी के पश्चात् जब सराभा ने होंठ खोले तो उनपर मधुर-सी मुस्कान थी, "तुम्हारा भैया ठीक ही कहता था कि यह लड़की शैतान की नानी है। अच्छा यह तो बताओ कि इतनी कमजोर क्यों हो गई हो? सब कुछ सच बतलाना।"

"एकदम सच?"

"हां।"

तब उत्तर में बीरी ने अपनी दुर्बलता का कारण बतला दिया।

"वाह-वाह!" सराभा प्रभावित होकर बोला, "नानी नहीं, बल्कि तुम्हें तो पड़नानी कहना चाहिए।"

बीरी हल्का-सा मुस्कराकर बोली, "क्या करती! सारे जीवन में आपने एक ही बात तो कही थी, वह भी न मानती?"

"मैंने कौन-सी बात कही थी?"

"भूल गए? गिरफ्तार होते समय क्या आपने मुझे संदेश नहीं भेजा था कि नानी से कह देना कि 'एक म्यान में दो तलवारें' नहीं समा सकतीं?"

"हूं।" सराभा इस हुंकार के पश्चात् चुप हो गया।

"आपने क्या नहीं कहला भेजा था?" बीरी ने फिर पूछा।

"कहला तो भेजा था, पर मेरा मतलब······"

"आपका मतलब क्या था?" बीरी ने उसकी ओर ताकते हुए

है। मैं यह भी सुन चुकी हूं, जो अपने साथियों से आप कहा क
कि फांसी चढ़ने के लिए आप इसलिए उतावले हैं कि दूसरा जन्म
अपने अधूरे कार्यों को फिर से आरम्भ कर सकेंगे। यह बात
कही थी या लोग ऐसे ही गप्पें हांकते हैं?"

"कही थी, रघुबीर। केवल कही ही नहीं, बल्कि यही मेरे जी
अन्तिम इच्छा है।"

"गोया आप पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं—क्यों?"

"बेशक, पुनर्जन्म के सिद्धान्त में मेरा शत-प्रतिशत विश्वास है

"और मेरा भी। तभी तो मैं चाहती हूं कि यदि इस जन्म
अपने देश के लिए कुछ नहीं कर सकी तो दूसरे जन्म में अवश्य ही
कर दिखाऊंगी। पर मैं तो आप जैसी पुरुष नहीं, बल्कि एक कमजोर
लड़की हूं, जो शायद अकेले अपने निशाने पर पूरी न उतर सकूं। उ
स्थिति में क्या आप मुझे सहयोग देने से इन्कार करेंगे? मुझे विश्वा
है कि इन्कार चाहकर भी आप नहीं कर सकेंगे। इस बात का आप
विषय में मुझे दिल की बेतार की तार द्वारा समाचार मिल चुका है
मेरे ऊपर ओढ़ी हुई यह लाल रंग की शाल आप देख रहे हैं? जब
आपसे मुलाकात करने के लिए घर से निकल रही थी, तो मैंने इसे शाल
नहीं, बल्कि 'सालू' समझकर ओढ़ा था।"

सराभा के हाथों में अब सलाखों के स्थान पर बीरी की कलाइयां
थीं। बीरी पर उसे प्रेम से कहीं अधिक दया आ रही

"चलो, मान लिया," सराभा की आवाज [illegible] तथा
मद्धम होती जा रही थी, "पर पगली, जिसका सुहा[illegible] करने के
लिए तुम इतनी उतावली हो, वह तो कल जा[illegible]
अभी बहुत लम्बी जिन्दगी बितानी है। मैं फिर भ[illegible] यह
पागलपन वाली बात सोची है रघुबीर! इतना अ[illegible]
उम्र विधवा बनकर..."

बिछुड़ने से पहले मैं एक बात आपसे पूछना चाहती हूं।"

"पूछो! बीरी, जो तुम्हारे मन में आए।"

"मुझे पूछना नहीं है, बल्कि कुछ मांगने के लिए आई हूं—दें

"यदि पूछा नहीं तो तुम जबरदस्ती भी छीन लोगी," स

मुस्कराया, "भारत की नारी क्या नहीं कर सकती ?"

"मैं…मैं…" बीरी कुछ रुककर बोली, "आज वर-प्राप्ति

आशा लेकर आई हूं—ठुकराइए नहीं।"

"ओ, बीरी!" सराभा भावावेश में डोल रहा था, "तुम

तुम…" और इससे आगे वह कुछ नहीं बोल सका।

"कह दीजिए एक बार—तथास्तु।" बीरी की आंखों में आ

के वही भाव थे जिन्हें ठुकराने के लिए मनुष्य तो क्या भगवान की भ

हिम्मत नहीं। और उन्हीं की गहराई में से सराभा की जबान ने शिथिल

सा हरकत की—त…तथास्तु।"

"धन्यवाद!" उसके हाथों को दबाती हुई बीरी गद्गद होकर बोली, "आपने मेरे 'सातु' की लाज रख ली।"

"पर बीरी," सराभा इस समय बीरी के प्रति सहानुभूति के भावों में डूबा हुआ था, "यह मांगकर तुमने अपनी जवानी से कितना अन्याय किया, यही मैं सोच रहा हूं। इतने शब्दों में तुमने अपने को…"

"छोड़िये भी।" वह नई दुल्हन के से नखरे में उसके पंजे को हल्का-सा झटका देकर बोली, "ऐसी बातें कहकर भारतमाता की एक बेटी का निरादर करेंगे तो मैं झगड़ा कर बैठूंगी।"

केवल प्रेम ही नहीं, बीरी के प्रति श्रद्धा के रंग में रंगकर वह बोला, "ठीक अर्थों में तुम भारत की बेटी हो, तुम्हारी बातें सुनकर पहले तो मैं भयभीत हो उठा था कि शायद तुम मेरे मन को कमजोर बनाने के लिए आई हो, पर अब मुझे पता चला कि तुम मुझे एक नई शक्ति देकर जा रही हो।"

"ये प्रशंसा की बातें छोड़िये।" वह हंस पड़ी, "यदि आपको मुझमें कोई ऐसा गुण दिखाई दिया हो तो आप मुझमें अपनी ही परछाई देख रहे हैं, नहीं तो मुझ जैसे गंवार लड़की में क्या इस तरह का कोई गुण हो सकता है!"

बातचीत का क्रम अभी यहीं तक ही पहुंचा था कि भारी-भरकम बूटों की चाप सुनकर दोनों का ध्यान भंग हो गया। उन्होंने देखा कि वराण्डे से वही कर्मचारी, जो बीरी को मुलाकात के लिए लाए थे, गुज़र रहे थे, जो इस बात का संकेत था कि मुलाकात का समय बहुत लम्बा होता जा रहा है। यदि सराभा की जगह कोई अन्य व्यक्ति होता तो अब तक शायद कब की मुलाकात समाप्त करवा दी गई होती; पर सराभा से इतनी बात कहने की किसमें हिम्मत हो सकती थी!

"अच्छा मेरी दुल्हन!" सराभा के चेहरे पर प्रसन्नता और दया के मिश्रित भाव थे, "हमारा स्वयंवर हो गया। परन्तु एक बात बहुत बुरी हुई कि इस समय घूंघट उठाने के लिए तुझे देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। दुल्हन के हाथ पर कुछ न कुछ तो रखना ही चाहिए था।" कहते-कहते जब उसने नीचे की ओर ध्यान किया तो देखा कि बाहर से पीपल का एक सूखा पत्ता हवा से उड़कर सलाखों द्वारा अन्दर तक आ गया है। उसने झुककर वह उठाया और बीरी को देता हुआ बोला, "लो, इसे मुंह दिखाने की भेंट समझ लेना।"

पूरे चाव से मानो मोतियों की माला हो, बीरी ने उसे यह कहते हुए पकड़ लिया, "यह शकुन की निशानी है। तभी तो विवाह के अवसर पर लोग इसे दरवाज़ों पर बांधकर बन्दनवार बनाते हैं।" और उसने उस भेंट को चूमकर हृदय से लगा लिया।

"ले मेरी रानी," बीरी के हाथ को होंठों से छुआकर सराभा बोला, "हमारी सुहागरात्रि का यह पहला चुम्बन।" और फिर बीरी ने भी वैसे ही किया।

इससे पहले कि लौटने के लिए बीरी कदम मोड़ती, सराभा—जो उसके चेहरे पर दृष्टि गड़ाए खड़ा था—ऐसे बोल उठा मानो उसे बीरी के चेहरे पर कोई अनिष्टकारी झलक दिखाई पड़ी हो, "अरी दुल्हन, तुम्हारी आंखों में यह क्या देख रहा हूं?"

"कुछ भी तो नहीं," बीरी बोली, "डरिए मत। यह आंसू नहीं, मिलन की खुशी ने पलकों को तनिक बोझिल बना दिया है।"

"ऊहूं।" वह विरोध में बोला, "चाहे कैसे भी हो, यही चीज़ क्रांतिकारियों की सबसे बड़ी शत्रु समझी जाती है; ज़रा आगे बढ़ो"।

बीरी का माथा सलाखों से सट गया। सराभा ने उसकी शान का

कोना पकड़कर उसकी आँखों पर फेरते हुए कहा, "आ को यह चीज कभी भूलकर भी आँखों में नहीं लानी चाहि

"भूल हो गई," बीरी सलाखों को छोड़ती हुई बोली दूसरे जन्म में मिलेंगे तो आप मुझे मन से दृढ़ पाएंगे।"

"अच्छा बीरी, भगवान भली करें।" एक बार फिर को घुमकर सत्यभा ने उसके दोनों हाथों को एक प्यारे सलाखों से बाहर कर दिया और कहा, "अच्छा बेटी रात्रि।"

"शुभ रात्रि, मोरे रा""जा!" उच्चारण करते समय मुंह से वाक्य का अन्तिम भाग टूट-फूटकर निकल सका। एक बार फिर उसी स्त्री-सुलभ निर्बलता के कारण आँखों तथा आर्द्रता ने उसे हिला दिया था। लौटने से पहले बीरी को इ बात और सुनाई दी, "देखना, कहीं इतनी भारी गठरी रास्ते में फेंक देना।"

"आप मेरी चिन्ता न करें।" बीरी की आवाज कांपकर मुख से निकली, "आप अपने पर नियन्त्रण रखें। कहीं कदम न न आएं तख्ते पर आकर।"

इतनी बात कहकर जब बीरी ने कदम मोड़े तो गाई जा रही ये पंक्तियां दूर तक सुनाई देती रहीं—

'मजा इश्क का कुछ वही जानते हैं,
कि जो मौत को जिन्दगी जानते हैं।
नहीं जानते हैं कि अन्जाम क्या है,
वो मरना महज दिल्लगी जानते हैं।'

३५

बाबाजी जब घर से निकले तो उनका [illegible] पहले वे लुधियाना जाएंगे और एकाध दिन वहीं मयुरासिंह के घरवालों से कुछ पता लगाने का प्र उनका विचार जल्दी ही बदल गया। उन्हें याद

२६

सरकारी कार्यकर्ताओं की सहायता से ऐसा कौन-सा कार्य है जो असम्भव हो। फिर कार्यकर्ता भी तो किसी छोटे-मोटे अफसर का नहीं डिप्टी कमिश्नर का था। और इससे भी बढ़कर बाबाजी जिस कार्य के लिए जा रहे थे, वह था सरकार की बहुत बड़ी सेवा के रूप में। परिणामस्वरूप इसने बाबाजी के लिए यही कार्य किया कि दूसरे सिपाही बदलने की जो बारी को देख, पेशावर के डी० सी० ने उन्हें पसलों पर बिठाया। बजाय इसके कि बाबाजी को घसीटे के रूप भेजा जाता, जिससे उन्हें कष्ट को सवारी करनी पड़ती, उनके लिए सरकारी मोटरकार का प्रबन्ध किया गया। प्राइवेट मोटरें उन दिनों नहीं थी।

दो दिन पेशावर रहने के पश्चात् वे सुबह आठ बजे सरकारी कार पर सवार हुए, और रात्रि के दस बजे के लगभग काबुल जा पहुँचे। कार ने आठ दिनों की बजाय केवल चौदह घंटों में उन्हें काबुल पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचने पर बाबाजी को ऐसे लगा मानो 'शाह बहराम' को किसी जादू देव ने अपने पंखों पर बिठाकर क्षण-भर में काबुल ला पटका हो—कहाँ पेशावर और कहाँ अफगानिस्तान!

नगर चाहे उन्होंने देखा हुआ था, परन्तु समय ने बहुत उलट-फेर कर दिया था, फिर भी बाबाजी को अपने कुछेक शिष्य-सेवकों के मुहल्लों की याद थी और काबुल पहुँचकर वे उनमें से एक के घर जा पहुँचे। उन्हें पहचानते ही परिवार को परमत्र प्रसन्नता हुई। चारों ओर 'साहब आ गए' की आवाजें गूंजने लगीं और देखते ही देखते शिष्य-सेवकों का झुरमुट उनके चारों ओर इकट्ठा हो गया, कुछ तो पत्नों ने और कुछ अपने बोलों ने उनकी सहायता की।

एक मकान के सुसज्जित दुमंजले में बाबाजी को ठहराया गया। नगर के जिस किसी भाग में भी कोई शिष्य-सेवक रहता था उसे सूचना भेज दी गई, जिसके फलस्वरूप दर्शनार्थियों की भीड़ लग गई। श्रद्धालु शिष्य-सेवक अपनी यथाशक्ति भेंट लेकर चरण-वन्दना करने के लिए उपस्थित होने लगे।

काबुल में प्रवेश करने पर उन्हें शिष्य-सेवकों द्वारा जितना आदर-

बड़ी [illegible] की [illegible] हुक्म [illegible] को [illegible] के लिए [illegible] दिया। उन्होंने [illegible] देश [illegible] मथुरासिंह को [illegible] भी [illegible] कि बाबाजी न केवल [illegible] हैं, बल्कि उनके [illegible] विचारों [illegible] और [illegible] हैं। [illegible] ही [illegible] की। उन्होंने [illegible] यह प्रमाणित कर दिया कि उन्हें बाबाजी [illegible] क्रांतिकारी [illegible] दिये गये। डा० मथुरासिंह [illegible] के समय ही [illegible] अब बाबाजी ने उन्हें बताया कि उनका [illegible] भी दूर नहीं है, जिसे अपने देश की सेवा करने के लिए उन्होंने [illegible] में अर्पण कर दिया है।

"[illegible] यह सब [illegible] आ रहे हैं ठाकुर जी?" मथुरासिंह ने पूछा।

"बहुत बारी, [illegible] एक-दो दिन हुए।"

"तो आप मेहरबानी करके मेरा एक आवश्यक काम करें। मैं [illegible] से [illegible] हुआ हूं।"

"काम के लिए मैं क्यों नहीं!" बाबाजी [illegible] से बोले, "आप सिर पर कफन बांधकर देश की सेवा के लिए कटिबद्ध बने हुए हैं। यदि आपके लिए अपने प्राण न्यौछावर करने पड़ें तो पीछे नहीं हटूंगा। बताइए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?"

"मामला [illegible] है ठाकुर जी। मैं आपके द्वारा कुछ आवश्यक कागजात भेजना चाहता हूं।"

"लीजिए, यह भी कोई कठिन काम है? जहां पर कहेंगे पहुंचाकर तभी घर में कदम रखूंगा।"

"बड़ी मेहरबानी।" मथुरासिंह ने प्रार्थना की, "पत्र लाहौर पहुंचाने हैं। मैं पता-ठिकाना लिख दूंगा। यह तो आपको पता होगा कि हमारे सात साथियों को शीघ्र ही फांसी पर लटकाया जाएगा।

"मुझे पता है," बाबाजी बोले, "करतारसिंह सराभा और उसके साथियों को। ईश्वर इन अत्याचारी गोरों का सत्यानाश करें, जिन्होंने ...." और वे कितने ही बड़े-बड़े शाप गोरों को देने लगे।

पत्रों का उद्देश्य प्रकट करते हुए डा० मथुरासिंह ने बाबाजी को

सम्बन्धियों को कभी किसी ने कुछ कहा ? भाखिर अंग्रेज़ों का क न्यायपूर्ण है, कोई नादिरशाही राज्य तो नहीं है।'

'मथुरासिंह' का नाम मस्तिष्क में आते ही उन्हें एक और का विचार आ गया, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने अभी तक सोचा नहीं था—'और उस पुरस्कार पर भी तो मेरा ही अधिकार है पंजाब सरकार ने उसकी गिरफ्तारी के लिए रखा हुआ है, जि संबंध में उस पाखंडी डी० सी० ने उल्लेख तक नहीं किया था। उस बदमाशी अब मेरी समझ में आई। वास्तव में उसने तो शत्रु की ल पर सांप पटकने जैसी चतुरता खेली थी। सांप मरने पर भी उस विजय, और शत्रु मरने पर भी उसीकी। अपराधी के पकड़े जाने सारा श्रेय उसीको मिल जाता और मुझे तो वह यूं ही टाल देता उसने मुझे कितना बेवकूफ बनाया!'

इसी प्रकार के उठते-गिरते विचारों में बाबाजी ने रेल की या समाप्त की। गाड़ी लाहौर स्टेशन पर पहुंची। कुली को आवाज देने की आवश्यकता नहीं पड़ी। गाड़ी रुकते ही दो-तीन कुली डिब्बे में आ घुसे। फर्स्ट क्लास के यात्रियों को इस प्रकार की सुविधाएं स्वाभाविक रूप से प्राप्त होती हैं।

बहुत-सा सामान था, जो वे काबुल से उपहार के रूप में लेकर आए थे। कुली ने मजदूरी के लालच में अकेले ही सारा सामान उठा लिया। बाबाजी आगे-आगे चलने लगे। प्लेटफार्म पर चलते हुए सहसा उन्होंने एक अखबार वाले की आवाज़ सुनी, "सातों बाग़ियों को फांसी दे दी गई।" उनका ध्यान उधर आकर्षित हुआ। उन्होंने झट से एक समाचारपत्र खरीद लिया, जिसका पहला ही शीर्षक उन्होंने पढ़ा:

"१८ नवम्बर को सातों बाग़ियों को फांसी पर लटका दिया गया।"

उसके नीचे छोटा शीर्षक था—"करतारसिंह सराभा ने राष्ट्रीय गीत गाते हुए फांसी की रस्सी को पहले चूमा, और फिर स्वयं ही रस्सी का फंदा अपने गले में डाल लिया।"

दोनों शीर्षकों को पढ़कर, प्लेटफार्म पर चलते हुए बाबाजी के मन ... ही प्रसन्नता से परिपूर्ण था—और भी अधिक हुआ

...धा-पत्रा की कभी किसी ने कुछ कहा ? आखिर अंग्रेजों का न्याय न्यायपूर्ण है, कोई मादिरशाही राज्य तो नहीं है।'

'मथुरासिंह' का नाम मस्तिष्क में आते ही उन्हें एक और इ... का विचार आ गया, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने कभी तक सोचा ही नहीं था—'और उस पुरस्कार पर भी तो मेरा ही अधिकार है जो पंजाब सरकार ने उनकी गिरफ्तारी के लिए रखा हुआ है, जिसके संबंध में उस पातकी डी० सी० ने उल्लेख तक नहीं किया था। बदमाशी अब मेरी समझ में आई। वास्तव में उसने तो धनु की पर सांप पटकने जैसी चतुरता खेली थी। सांप मरने पर भी ... विजय, और धनु मरने पर भी उसी की। अपराधी के पकड़े जा... सारा श्रेय उसीको मिल जाता और मुझे तो वह यूं ही टाप दे... उसने मुझे कितना बेवकूफ बनाया !'

इसी प्रकार के उठते-गिरते विचारों में बाबाजी ने रेल की या... समाप्त की। गाड़ी लाहौर स्टेशन पर पहुंची। कुली को आवाज की आवश्यकता नहीं पड़ी। गाड़ी रुकते ही दो-तीन कुली डिब्बे में घुसे। फर्स्ट क्लास के यात्रियों को इस प्रकार की सुविधाएं स्वाभावि... रूप से प्राप्त होती हैं।

बहुत-सा सामान था, जो वे काबुल से उपहार के रूप में ले आए थे। कुली ने मजदूरी के लालच में अकेले ही सारा सामान उ... लिया। बाबाजी आगे-आगे चलने लगे। प्लेटफार्म पर चलते हुए सहसा उन्होंने एक अखबार वाले की आवाज सुनी, "सातों बागियों को फांसी दे दी गई।" उनका ध्यान उधर आकर्षित हुआ। उन्होंने झट से एक समाचारपत्र खरीद लिया, जिसका पहला ही शीर्षक उन्होंने पढ़ा :

"१८ नवम्बर को सातों बागियों को फांसी पर लटका दिया गया।"

उसके नीचे छोटा शीर्षक था—"करतारसिंह सराभा ने राष्ट्रीय गीत गाते हुए फांसी की रस्सी को पहले चूमा, और फिर स्वयं ही रस्सी का फंदा अपने गले में डाल लिया।"

दोनों शीर्षकों को पढ़कर, प्लेटफार्म पर चलते हुए बाबाजी के मन ने—जो पहले ही प्रसन्नता से परिपूर्ण था—और भी अधिक खुशी

सम्बन्धियों को कभी किसी ने कुछ कहा ? आखिर अंग्रेज़ों का क
न्यायपूर्ण है, कोई नादिरशाही राज्य तो नहीं है।'

'मथुरासिंह' का नाम मस्तिष्क में आते ही उन्हें एक और
का विचार आ गया, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने अभी तक सोचा
नहीं था—'और उस पुरस्कार पर भी तो मेरा ही अधिकार
पंजाब सरकार ने उसकी गिरफ्तारी के लिए रखा हुआ है, ि
संबंध में उस पाखंडी डी० सी० ने उल्लेख तक नहीं किया था। उ
बदमाशी अब मेरी समझ में आई। वास्तव में उसने तो शत्रु की
पर सांप पटकने जैसी चतुरता खेली थी। सांप मरने पर भी उ
विजय, और शत्रु मरने पर भी उसीकी। अपराधी के पकड़े जाने
सारा श्रेय उसीको मिल जाता और मुझे तो वह यूं ही टाल दे
उसने मुझे कितना बेवकूफ बनाया!'

इसी प्रकार के उठते-गिरते विचारों में बाबाजी ने रेल की य
समाप्त की। गाड़ी लाहौर स्टेशन पर पहुंची। कुली की आवाज़
की आवश्यकता नहीं पड़ी। गाड़ी रुकते ही दो-तीन कुली डिब्बे में
घुसे। फर्स्ट क्लास के यात्रियों को इस प्रकार की सुविधाएं स्वाभावि
रूप से प्राप्त होती हैं।

बहुत-सा सामान था, जो वे काबुल से उपहार के रूप में ले
आए थे। कुली ने मजदूरी के लालच में अकेले ही सारा सामान उ
लिया। बाबाजी आगे-आगे चलने लगे। प्लेटफार्म पर चलते
सहसा उन्होंने एक अखबार वाले की आवाज़ सुनी, "सातों बाग़ि
को फांसी दे दी गई।" उनका ध्यान उधर आकर्षित हुआ। उन्हें
झट से एक समाचारपत्र खरीद लिया, जिसका पहला ही शीर्ष
उन्होंने पढ़ा :

"१८ नवम्बर को सातों बाग़ियों को फांसी पर लटका दि
गया।"

उसके नीचे छोटा शीर्षक था—"करतारसिंह सराभा ने राष्ट्री
गीत गाते हुए फांसी की रस्सी को पहले चूमा, और फिर स्वयं ह
रस्सी का फंदा अपने गले में डाल लिया।"

दोनों शीर्षकों को पढ़कर, प्लेटफार्म पर चलते हुए बाबाजी के म
ने—जो पहले ही प्रसन्नता से परिपूर्ण था—और भी अधिक खुशी

कुली ने एक हुक्म के मालिक को मारा हुआ था, इसी हुक्म से बाबाजी को बाहर रख पूरा गाड़ी की ओर चल पड़ा।

आराम करने के पश्चात् जब कुली ने बाबाजी को धन्यवाद देते हुए किराये के पैसे बतलाए, तो उसकी बातें सुनता रहा ही थी। बाबाजी ने के कुली को मजदूरी दे डाली।

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लिमिटिड
के

कुछ प्रसिद्ध उपन्यास

आभा .	आचार्य चतुरसेन
धर्मपुत्र	"
पतिता	"
माती	"
हृदय की परख	"
हृदय की प्यास	"
मैली चांदनी	गुलशन नंदा
भूल	गुरुदत्त
वनवासी	"
ममता	"
मैं न मानूं	"
परिवर्तन	"
बम्बा	नागार्जुन
वरुण के बेटे	"
तारा	यशपाल
बारह घंटे	"
रम्भा	भैरवप्रसाद गुप्त
धाती .	रांगेय राघव
प्रमिला	हंसराज 'रहबर'
फागुन के दिन चार	'उग्र'
बुधुआ की बेटी :	"
त्यागपत्र	जैनेन्द्रकुमार
अलविदा :	अनन्त वाचस्पति
तीन दिन	रजनी पनिक्कर
लौटे हुए मुसाफिर :	कमलेश्वर
तीसरा आदमी	"
सरहदों के बीच	"
मन की घाटियां :	अमरकान्त
पराई डाल का पंछी	"
डाक्टर देव :	अमृता प्रीतम
नीना	"
[illegible]	"
बन्द दरवाजा	"
हीरे की कनी	"
रंग का पत्ता	"
एक सवाल	"
नागमणि	"
धरती, सागर और सीपियां	"
गद्दार :	कृष्न चन्दर
एक गधे की वापसी	"
प्यास	"
एक गधे की आत्मकथा	"
फिल्मी फुलझड़ियाँ	"
सपनों का कैदी	"
[illegible] की रानी	"
तारों के किनारे	"
–	"

[illegible]

[illegible]

हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा० लिमिटिड

के

कुछ प्रसिद्ध उपन्यास

आभा : आचार्य चतुरसेन
धर्मपुत्र „
पतिता „
माती „
हृदय की परख „
हृदय की प्यास „
मैली चांदनी : गुलशन नंदा
भूल : गुरुदत्त
वनवासी „
ममता „
मैं न मानूं „
परिवर्तन „
चम्पा : नागार्जुन
वरुण के बेटे „
तारा : यशपाल
बारह घंटे „
रम्भा : भैरवप्रसाद गुप्त
पापी : रांगेय राघव
अमिता : हंसराज 'रहबर'
फागुन के दिन चार : 'उग्र'
बुधुआ की बेटी : „
त्यागपत्र : जैनेन्द्रकुमार
अलविदा : जयन्त वाचस्पति
तीन दिन : रजनी पनिक्कर

लौटे हुए मुसाफिर : कमलेश्वर
तीसरा आदमी „
सरहदों के बीच „
मन की घाटियां : अमरकान्त
पराई डाल का पंछी „
डाक्टर देव : अमृता प्रीतम
नीना „
अशु „
बन्द दरवाजा „
हीरे की कनी „
रंग का पत्ता „
एक सवाल „
नागमणि „
धरती, सागर और सीपियां „
गद्दार : कृश्न चन्दर
एक गधे की वापसी „
प्यास „
एक गधे की आत्मकथा „
फिल्मी फुलझड़ियां „
सपनों का कैदी „
बनगांव की रानी „
यादों के चिनार „
मिट्टी के सनम

गद्दार : मुल्कराज आनन्द

एक चादर मैली सी : राजेन्द्रसिंह बेदी

रजनी : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

आनन्दमठ ,,

दुर्गेशनन्दिनी ,,

विषवृक्ष ,,

कृष्णकान्त का वसीयतनामा ,,

कपालकुण्डला ,,

दो बहनें : रवीन्द्रनाथ टागुर

जुदाई की शाम ,,

बहूरानी ,,

काबुलीवाला ,,

गोरा ,,

आँख की किरकिरी ,,

कुमुदिनी ,,

घर और बाहर ,,

मिलन ,,

चार अध्याय ,,

उजड़ा घर : रवीन्द्रनाथ टागुर

मीरजा ,,

देवदास : शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अन्तिम परिचय ,,

चरित्रहीन ,,

दत्ता ,,

शेष प्रश्न ,,

विराज बहू ,,

गृहदाह ,,

मझली दीदी : बड़ी दीदी ,,

श्रीकान्त ,,

चन्द्रनाथ ,,

परिणीता

सुभदा ,,

पथ के दावेदार ,,

ब्राह्मण की बेटी

विप्रदास

लेन-देन

प्रेम या वासना :

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य एक

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं व
तथा रेलवे बुक-स्टालों से मिलती हैं।
कठिनाई हो तो सीधे हमसे

शहीद : मुल्कराज आनन्द
एक चादर मैली सी :
राजेन्द्रसिंह बेदी
रजनी :
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
आनन्दमठ ,,
दुर्गेशनन्दिनी ,,
विषवृक्ष ,,
कृष्णकान्त का
वसीयतनामा ,,
कपालकुण्डला ,,
दो बहनें : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
जुदाई की शाम ,,
बहूरानी ,,
काबुलीवाला ,,
गोरा ,,
आँख की किरकिरी ,,
कुमुदिनी ,,
घर और बाहर ,,
मिलन ,,
चार अध्याय ,,

डाकघर : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
नीरजा ,,
देवदास :
शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय
पल्ली परिवार ,,
चरित्रहीन ,,
दत्ता ,,
देव इलन ,,
विराज बहू ,,
गृहदाह ,,
मझली दीदी बड़ी दीदी ,,
श्रीकान्त ,,
चन्द्रनाथ ,,
परिणीता ,,
शुभदा ,,
पथ के दावेदार ,,
ब्राह्मण की बेटी ,,
विप्रदास ,,
लेन-देन ,,
प्रेम या वासना : टॉलस्टॉय

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य एक रुपया

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं व रेलवे बुक-स्टालों तथा रोडवेज़ बुक-स्टालों से मिलती हैं। अगर कोई कठिनाई हो तो सीधे हमसे मंगाएं।

शहीद : मुल्कराज आनन्द
एक चादर मैली सी :
राजेन्द्रसिंह बेदी
रजनी :
बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
आनन्दमठ ,,
दुर्गेशनन्दिनी ,,
विषवृक्ष ,,
कृष्णकान्त का
वसीयतनामा ,,
कपालकुण्डला ,,
दो बहनें : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
जुदाई की शाम ,,
बहूरानी ,,
काबुलीवाला ,,
गोरा ,,
आँख की किरकिरी ,,
कुमुदिनी ,,
घर और बाहर ,,
मिलन ,,
चार अध्याय ,,

उजड़ा घर : रवीन्द्रनाथ ठाकुर
नौका ,,
देवदास :
शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय
अन्तिम परिचय ,,
चरित्रहीन ,,
दत्ता ,,
शेष प्रश्न ,,
विराज बहू ,,
गृहदाह ,,
मझली दीदी : बड़ी दीदी ,,
श्रीकान्त ,,
चन्द्रनाथ ,,
परिणीता ,,
शुभदा ,,
पथ के दावेदार ,,
ब्राह्मण की बेटी ,,
विप्रदास ,,
लेन-देन ,,
प्रेम या वासना : टॉलस्टॉय

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य एक रुपया

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं व रेलवे बुक-स्टालों
तथा रोडवेज बुक-स्टालों से मिलती हैं। अगर कोई
कठिनाई हो तो सीधे हमसे मंगाए।

[illegible] — [illegible]
[illegible]
[illegible]

रजनी

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

आनन्दमठ ..
दुर्गेशनन्दिनी ..
विषवृक्ष ..
कृष्णकान्त का
वसीयतनामा ..
कपालकुण्डला ..

दो बहनें - रवीन्द्रनाथ ठाकुर
[illegible] ..
बहूरानी ..
काबुलीवाला ..
गोरा ..
आँख की किरकिरी ..
कुमुदिनी ..
घर और बाहर
विमला
चार अध्याय ..

दृष्टिदान - रवीन्द्रनाथ ठाकुर
[illegible] ..
देवदास :

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय

पंडित मोशाय ..
चरित्रहीन ..
दत्ता ..
[illegible] ..
बिराज बहू ..
गृहदाह ..
मझली दीदी बड़ी दीदी ..
श्रीकान्त ..
[illegible] ..
परिणीता ..
शुभदा ..
पथ के दावेदार ..
ब्राह्मण की बेटी ..
विप्रदास ..
लेन-देन ..
प्रेम या वासना - टॉल्सटॉय

प्रत्येक पुस्तक का मूल्य एक रुपया

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं व रेलवे बुक-स्टालों तथा व्हीलर के बुक-स्टालों से मिलती हैं। अगर कोई कठिनाई हो तो सीधे हमसे मंगाएं।